गर्दिशों के गणतंत्र में

(काव्य/ग़ज़ल-संग्रह)

गर्दिशों के गणतंत्र में

(काव्य/ग़ज़ल-संग्रह)

प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'

अयन प्रकाशन, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

ISBN : 978-81-19299-

अयन प्रकाशन
जे–19/39, राजापुरी, उत्तम नगर,
नई दिल्ली–110059
e-mail : ayanprakashan@gmail.com
website : www.ayanprakashan.com

© : प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'

प्रथम संस्करण : 2024

मूल्य : 000.00 रुपये

GARDISHON KE GANTANTRA MEIN
(*Poems/Gazal-Sangrah*) ***By*: *Prof. Dr. Shashikant 'Saawan'***

टाइपसेटिंग : अजेश भार्गव, दिल्ली, 9818747603
मुद्रक : एस. पी. कौशिक एंटरप्राइज़ेज़, दिल्ली–110093

समर्पण!

''विश्वविख्यात विधिज्ञ, ज्ञान के प्रतीक,
आधुनिक भारत के शिल्पकार
क्रांतिसूर्य एवं बोधिसत्व
डॉ. बाबासाहब आंबेडकर जी द्वारा लिखित...
विश्व का महान ग्रंथ, जो
न्याय, समता, बंधुता, लोक कल्याणकारी,
स्वतंत्रताधिष्ठित, तथा सर्वसमावेशी है,
उस 'भारतीय संविधान'
को सादर समर्पित...''

—प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'

भूमिका

प्रबुद्ध साथियों!...

गणतंत्र को गतिमान बनाने, साथ सब चलें।
संसद को शक्तिशाली कराने, साथ सब चलें।
फिर से यह वतन सोने की चिड़िया कहलाएगा,
जरा, संविधान की बुनियाद की ओर साथ सब चलें।।

भारतीय स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के पश्चात और गणतंत्र के अमृत महोत्सवी वर्ष में यह साहित्य कृति 'गर्दिशों के गणतंत्र में' देशवासियों के सम्मुख रखते, संमिश्र भावों को अनुभव कर रहा हूँ। सिर्फ भाव ही नहीं बल्कि विविध विचारों के गर्दिशों में अनेकों देशवासियों समवेत मैं भी घिरा हूँ। इस गौरवशाली बुद्धभूमि में सत्य, अहिंसा, त्याग, सेवा, बलिदान, ज्ञान, सहयोग और सत्कर्मों की समृद्ध परम्परा रही है। सत्य, सेवा एवं सदाचाराधिष्ठित भारतीय स्वर्णिम युग में विभिन्न देशों के ज्ञानपिपासु एवं सत्कर्म साधक हजारों की संख्या में तक्षशिला, नालंदा जैसे सर्वाधिक प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करते थे। इनके माध्यम से संस्कृति और सभ्यता का विशुद्ध आदान-प्रदान (अभिसरण) सदियों तक होता रहा।

उदात्त विचारों और भावों की यह राष्ट्रनौका अनेक पीढ़ियों तक सत्कर्मों के प्रवाह पर चलती रही। सामाजिक सुधार और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ये दोनों भी हमारे राष्ट्रीय उत्थानयात्रा के महत्वपूर्ण स्थान रहे हैं। विदेशी- अंग्रेजों की कैद से हमारे वीर, शहीदों और सुधारकों ने प्राणों की बाजी लगाकर, देश को आजाद करा दिया। देश की बागडोर, जनता के नुमाईंदों के हाथों सौंप दी। समय के साथ देश और देशवासियों की संवेदनाओं में परिवर्तन होता रहा। लालच, धोखाधड़ी, स्वार्थांधता, सामाजिक-धार्मिक पाखंड, जातियता-अन्याय, अत्याचार विकृत्त राजनीति एवं घिनौनी मानसिकता आदि राष्ट्रउत्थान-नौका पर समय-समय पर प्रहार करने लगे। समर्पण, सेवा, सत्कर्म और सदाचारों के दर्शन राष्ट्रजीवन में पूर्ववत नहीं रहे। हमारे मूल्य, आदर्श और संस्कार बदलते परिवेश के साथ कर्मकांड तथा प्रदर्शनकारी

वृत्तिवश नये रूपों में नई पीढ़ियों के सम्मुख उपस्थित होते रहे।

''शर्म करने वाली बातों पर, लोग गर्व करने लगे।
और गर्व करने वाली बातों पर, शर्म करने लगे।
पाखंड और प्रदर्शन के, इस शर्मनाक युग में,
इन्सानों को ठुकराकर, लोग हैवानों के पैर पड़ने लगे।।

भूमंडलीकरण अर्थात ग्लोबलाईजेशन के युग में जहाँ संपूर्ण विश्व बिग बाज़ार बनता जा रहा है, वहाँ हमारा हुनर, कौशल, योग्यता और परिवेश मनुष्य के व्यापारिक मूल्यांकन की कसौटियाँ बनती जा रही हैं। कम-से-कम समय और श्रमों में आदमी ऐसा रईस बन रहा है, जिसके कारण गरीब, वंचित, द्ररिद्री और बेरोजगारों की टोलियाँ निर्माण हो रही हैं। शोषित, उपेक्षित, मजदूर तथा स्त्रियों की पीड़ाओं एवं समस्याओं के रूकने या खत्म होने का शायद नाम नहीं है। आये दिन कोई न कोई वारदात, दुखद संदेश इनके संदर्भ में मीडिया पर पढ़ने, सुनने और देखने को मिलते हैं। इन अंतर्मुख करानेवाली आपत्तिजनक एवं पीड़ादायी खबरों की तीव्रता अधिकतर चाय और कॉफी के चुस्कियों तक मर्यादित होती जा रही है। ये सारी विकृतियाँ खुली आँखों से देखकर भी हममें से अधिकतर अफसोस के अलावा कुछ कर नहीं सकते।

मूल्यहीन तथा भ्रष्ट राजनीति ने हमारे 'आदर्शों के ओझोन' कवच को अपने विषैले किरणों से छेद करना आरंभ कर दिया है। विज्ञान के ज्ञानी? और अधिकतर अध्यापक भी अंधश्रद्धाओं के झाँसे में आकर आज के लुँटेरे महाराज और माताओं के चरणों में लीन नजर आते हैं। इनसे विवेकशिल एवं विज्ञानकेंद्री समाज तथा राष्ट्र का निर्माण कैसे और कहाँ तक हो पायेगा? हम और हमारा विज्ञान चंद्र पर पहुँच रहा है। समूचे अंतरिक्ष को अनुसंधान द्वारा अपनी मुट्ठी में करने की हमारी क्षमता है किन्तु हममें से अधिकतर देशवासी आज भी विषमतामयी परंपरा के संकीर्ण नजरिये से एक-दूसरों को देखना नहीं छोड़ते। देश की जनता के उत्थान के लिए सर्वसमावेशी एवं लोक मंगलकारी संविधान होते हुए भी हमारी स्वतंत्रता, समृद्धि तथा समग्र विकास से आज भी हम सभी कोसो दूर हैं। हमारे विशालकाय देश में अन्न, स्वास्थ्य, जल, आवास, शिक्षा, नौकरी एवं रोजगार जैसी मूलभूत आवश्यकताएँ अनेकों के लिए, आज भी समस्याएँ प्रतीत होती हैं। अधिकतर अधिकारी, अमीर तथा पूँजीपतियों ने देश के दलित-पीड़ित, गरीब, आदिवासी, किसान-मजदूरों के हक तथा अधिकारों पर षडयंत्री कब्जा कर रखा है। परिवादवाद, भाषावाद, जातिवाद,

आतंकवाद, भ्रष्टाचार, व्यसनाधिनता, भूखमरी, धर्मांधता, भ्रूणहत्या, चापलूसी, घूँसखोरी, वर्चस्ववाद जैसी अनेक समस्याएँ गणतंत्र के पटल पर गर्दिशें बनकर उभरी हैं। देश की इन सैकड़ों समस्याओं, विकृतियों, विडंबनाओं, विसंगतियों और अंतर्विरोधों के कोहरे में गणतंत्र खोता जा रहा है। सीधे रास्तों की अपेक्षा चापलूसीवाले एवं चोररास्तों पर चलनेवालों की मात्रा बढ़ रही है। इससे गणतंत्र की गरिमा और गतिशीलता समय-समय पर प्रभावित होती हैं।

धर्मांधता समवेत स्वार्थांधता जीवन के विविध क्षेत्रों में तेजी से पनपती जा रही है, जिन्हें हम आये दिन महसूस करते हैं। समाज और राष्ट्रजीवन की ये संकीर्ण और विकृत मनोवृत्तियाँ हमारे गौरवशाली देश के लिए घातक है। सर्वत्र 'लुँटेरे बाज़ारवाद' का और स्वार्थी आचरण का बोलबाला अधिकतर देखने और सुनने में आ रहा है। समाज और देश के अधिकतर क्षेत्रों को इस भोगवादी बाज़ारवाद ने प्रभावित किया है। इससे 'युज अँड थ्रो' की संकुचित और कुत्सित प्रवृत्तियाँ तेजी से फैल रही है। स्वास्थ, शिक्षा और सेवा के क्षेत्र भी इससे अछूते नहीं रहे।

सच्चाई के मेलों में, झूठों की दुकानें सँजने लगी।
बेईमानों की तिजौरियों में, ईमानदारी कैद होने लगी॥
भूमंडलीकरण के, भ्रष्ट बाजार क्या खुले!
नौटंकीबाजों की, कीमतें बढ़ने लगी॥

हमारा गौरवशाली गणतंत्र और उसकी गरिमा अखंड़ित एवं कालजयी बनी रहें। गणतंत्र की सारी गर्दिशें हट जायें। गणतंत्र का तेजस्वी सूर्य सभी देशवासियों के जीवन में सच्ची समता-समृद्धि का आलोक बिखरायें। इन्हीं मंगलकामनाओं के साथ...!

''गर्दिशी बादलों को, बरसाकर सूर्य बनो।
अँधेरे आसमां को, रोशनाकर चंद्र बनो।
और कब तक जीते रहेंगे, कुपमंडूपी कुँओं में?
खुद के बाहर झांककर, एक सच्चे इन्सान बनो॥''

अयन प्रकाशन और आप सभी पाठकों के प्रति हार्दिक आभार!

तिथि: 26 जनवरी 2024
(75वाँ भारतीय गणतंत्र दिवस)

-प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'
अमलनेर (खान्देश), महाराष्ट्र
Professorsaawan@gmail.com

अनुक्रम

आसमाँ को साथ लिये...

1. खुले आसमाँ की नीलाई ... 17
2. आसमाँ पाने के लिये ... 18
3. उजालों को बचाने ... 19
4. लगन से लक्ष्य को छु लो ... 20
5. लाख दीयों के साथ एक ... 21
6. ईमानदारी का नाम है इज़्ज़त ... 22
7. आसमाँ-सी इन्सानियत अब ... 23
8. अंधकार को आलोक में ... 24
9. रंग मीट जाते हैं, रूप ... 25
10. कदमों को बढ़ानेवाला ही ... 26
11. अज्ञानी आसमाँ का सूर्य बनना ... 27
12. कभी आसमाँ-सी छत बनकर ... 28
13. युगों के अंधकार को, जो ... 29
14. पूर्णिमा शरत् की, प्रीत ... 30
15. आसमाँ को साथ लिये ... 31
16. अनंत आसमाँ के रंग ... 32
17. अपनों का आसमाँ बनायें ... 33
18. इन्सानों को जन्म देने वाली ... 34
19. गुलामी की बेड़ियाँ तोड़कर ... 35
20. चाँद पर पहुँचकर मिटा दी ... 36
21. गर्दिशों के बादलों को ... 37

गणतंत्र को गतिमान बनाने...

22. बर्फ़-सी जमी जिंदगियों को	...	41
23. हैं अँधेरे चारों तरफ, पर	...	42
24. अज्ञान के अँधेरे मिटाओ	...	43
25. कभी अँधेरों में जलते दीपक	...	44
26. जैसे मिलते हैं जमीं-आसमाँ	...	45
27. राष्ट्रीयता की धारा है	...	46
28. भूख के निवालों का नाम है	...	47
29. खुदा खैर करें	...	48
30. नाम बदलने में देरी नहीं	...	49
31. सच्चाई के रंगों को बरसने	...	50
32. दिमागों का विकास कराने वाले	...	51
33. इस देश में दीन-दुखियों की खुशी	...	52
34. पंछियों और लहरों की तरह	...	53
35. रास्ते अपनी जिन्दगी खामोशी में	...	54
36. गणतंत्र को गतिमान बनाने	...	55
37. इन्सानियत की राहों पर आगे	...	56
38. अब कोई नया दौर, ऐसा भी	...	57
39. मेहनती हाथों को मनचाहे	...	58
40. प्रजा के हुनर ने ही प्रजातंत्र	...	59
41. दीपों के उत्सवों में कभी	...	60
42. गणतंत्र के गर्दिशों को	...	61

गर्दिशों के गणतंत्र में

43. भूखों के आँगन में लोग	...	65
44. गिरगिटों की गलियों में	...	66
45. करेलों ने स्वाद से कहा	...	67

46. उजालों की बस्तियाँ, अब ... 68
47. सच्चाई के मेलों में झूठों ... 69
48. मतलब के अँधे होकर ... 70
49. अँधेरों को मिटाने वाले, वे ... 71
50. करोड़ों कैलेंडर्स बदलायें ... 72
51. हकीकत कुछ और होती ... 73
52. कब तक जियोंगे, कूपमंडूपों? ... 74
53. बरसों पहले का कोरोंटाईन ... 75
54. गिरगिटों के गणतंत्र में ... 76
55. सावन को भी कभी हमारे ... 77
56. मानसिक गुलामी में, जी रहें हैं ... 78
57. कितनी अद्‌भुत सोच है, हम ... 79
58. मनगढंत-मतलबी बातों में अब ... 80
59. मकड़ी के जालों में ही फँसे ... 81
60. हुकुम मेरे आका! ... 82
61. नीले छत के तले ... 83
62. मतलबी अँधे समाज को अब ... 84
63. गिरगिटों को अपने गिरेबान में ... 85
64. गर्दिशों के गणतंत्र में... ... 86

भारत की बुनियाद है, बुद्ध

65. फिर से चलो बुद्ध की ओर ... 89
66. सागर इन्सानियत का लाया हूँ ... 90
67. पेड़ों की छाँव वाले वे लोग फिर ... 91
68. संस्कृतियों की सरिताएँ अब ... 92
69. जन्म में जिन्दगी की जंग ... 93
70. साथियों! सच कड़वा है ... 94
71. मेरे देश की बेटियों! ... 95
72. गुलामों को इन्सान बनानेवाले ... 96

73. विश्वविजयिनी 'बुद्धभूमि'	...	97
74. अँधेरों के कपालों पर उजाले	...	98
75. बौद्धधम्म का पुनरुत्थान	...	99
76. भारतीयता का सम्मान है, संविधान	...	100
77. विलगीकरण के दायरों को	...	101
78. भारत की बुनियाद है बुद्ध	...	102
79. आसमाँ की नीलाई अब आँखों	...	103
80. विध्वंस को शांत कराकर बुद्ध	...	104
81. बुद्ध की करुणा साँसों में समा	...	105
82. युद्ध नहीं, बुद्ध बनें	...	106
83. हजारों वर्ष पहले विश्व में	...	107
84. गर्दिशें गणतंत्र की हटाने...	...	108

आसमाँ को साथ लियें...

''आसमाँ को साथ लिये, धरती की ओर बढ़ते चलें।
चट्टानों से लड़कर, हरियाली को बिखरतें चलें।
हजारों प्यासे राहगीर हैं, राहों में हमारे...
हम स्वयं जलधारा बनकर, उन्हें नवजीवन देते चलें॥''

–'सावन'

1. खुले आसमाँ की नीलाई...

खुले आसमाँ की नीलाई, अपनी आँखों में भरते चलों।
धरती की हरियाली अपनी सांसों में समातें चलो।
विषमताओं से जलती, इस भूमि को बचाने के लिये...
मानवता के महासागर बनते चलो।

पहाड़ों में सत्य-सौंदर्य की स्थापना समझने, अजंता कि ओर चलो।
मिट्टी की महक प्राणों में परखने, एलोरा की ओर चलो।
कभी निकलता था सोने-सा धुँआ यहाँ पर...
इस भूमि को फिर से स्वर्णिम बनाने, फिर बुद्ध की ओर चलो।।

कभी अँधेरी गलियों की, पीड़ाओं की ओर भी चलो।
जो खत्म नहीं होती कभी, उन लिलाओं की ओर चलो।
अज्ञान और अविवेक जिन्हें बरबाद कर रहे हैं...
देश की उस होनहार, नई पीढ़ि की ओर भी चलो।

अपनी आँखों की रोशनी को अब आज़माते चलो।
जिंदगियों के उजालों को जरा ढूँढते चलो।
सूखते जा रहे हैं यहाँ मनुष्यता के सारे जलाशय...
इन्सानियत को बचाने, मानवता के भवसागर बनते चलो।।

❑

2. आसमाँ पाने के लियें...

आसमाँ पाने के लिये, पंछी बनकर उड़ों।
अंध:कार हटाने के लिये, सूर्य बनकर उगो।
यदि जिंदगी को सचमुच गुलिस्ताँ बनाना है...
तो खुद जल की निर्मलधारा बनकर, आगे बढ़ों।।

सपनों को सकारने के लिए लहू-पसीना एक करो।
उम्मीदों की उड़ाने, उम्रभर तक भरो।
यदि जिंदगियों को उजालों से रोशन करना है...
तो खुद दीयों की तरह औरों के लिए जलो।।

अपनी मंजिलों को पाने के लिए, अविरस चलने चलो।
अपने लक्ष्यों तक पहुंचने के लिए, अविश्राम बढ़ते चलो।
केवल टूटते तारों से कामना करने से कुछ नहीं होता...
इच्छाओं को हकीकत में बदलने, कड़ी मेहनत करते चलो।।

नेकी के रास्तों पर दृढ़ संकल्पों से आगे बढ़ो।
सच्चाई की राहों में, काँटों संकल्पों से आगे बढ़ो।
बिना कसौटियों के इन्सान कभी निखँरता नहीं है...
इन्सानियत को निखाँरते, अनेकों के जीवन भी घड़ो।।

❑

3. उजालों को बचानें...

उजालों को बचाने, सूर्य बनकर उगो।
अँधेरों को मिटाने चंद्र बनकर जागो।
मनुष्यता और मांगल्यता के उत्थान के लिये...
मानवता के महासागर बनकर जियो।।

भूखों के लिये, रोटी बनकर जियो।
प्यासों के लिये, जल बनकर जियो।
लाचार, निराधार और वंचितों के लिये...,
उनके घर की छत बनकर जियो।।

पीड़ितों के लिये, कभी मरहम बनकर जियो।
दुखियों के लिये, हमदर्द बनकर जियो।
अंध:कारमयी राहों के राहगीरों के लिए...,
कम-से-कम कभी जुगनू बनकर तो जियो।।

विषमता की इस दुनिया में, समता की मशाल बनकर जियो।
अराजकता के इस माहौल में, ममता की ढाल बनकर जियो।
सौ साल की इस क्षणभंगुर जिंदगी में...,
एक पल के लिए मानवता के गीतकार बनकर जियो।।

❑

4. लगन से लक्ष्य को...

लगन से लक्ष्य को छू लो, साथियों।
मेहनत से मकसद पा लो, साथियों।
पसीने से महकाते हैं, मिट्टी हम वतन की...,
अब इन्सानियत की उड़ान से–
पा लो मानवता का आसमान, साथियों।।

गरीबों की सहायता, करते रहो साथियों!
दुखियों की दुवाएँ, जुटाते रहो, साथियों!
क्योंकि इन दुवाओं में वह असर है...
जो लाख बददुवाओं को, बेअसर करती है साथियों।।

जिंदगियों के जज़्बात, सलामत रखो, साथियों।
नेकी के खयालात, बनाये रखो, साथियों।
आसमाँ को छूने वाली, लाख उड़ानें हो हमारी...
पर मिट्टी की खुशबू को हमेशा बचाएं रखे, साथियों!!

उपेक्षितों को कभी, गले लगा लो, साथियों!
तिरस्कृतों को कभी, हम अपना बना लो साथियों!
लाखों पोथियाँ पूजते हैं हम सदाचारों की...,
कभी ढ़ाई अक्षर के प्रेम को, भी पढ़ लो साथियों!!

❑

5. लाख दीयों के साथ...

लाख दीयों के साथ, एक दीया इन्सानियत का भी जलायें।
भारत की बुनियादी सभ्यता को फिर से रोशनायें।
पुकारती हैं हमें, बूँझे दीयों की अनगिनत बत्तियाँ...,
मानवता की एक ज्योत से, दीयों की संस्कृति जगमगायें।।

आदिम मनुष्य ने, जन समुदाय बनायें।
ग्राम्य लोक, सुख-दुख की कहानियाँ सुनायें।
इन आदिमों और ग्राम्यों में बसी निर्मलता से...,
एक बार, हमारे यंत्रवत वर्तमान जीवन से भी मिलायें।।

आदिवासी संस्कृति, राष्ट्र की बुनियाद कहलाये।
लोक जीवन की सभ्यता, देश की शिखर ध्वजा कहलाये।
राष्ट्र की उस प्राचीन गौरवशाली धरोहर का...,
आज के परिवेश हम, थोड़ा-सा स्वीकार जरूर करायें।।

मिट्टी में समाये हुए लाखों दीयों का, थोड़ा स्मरण कराये।
सभ्यता और संस्कृतियों के इन आलोक स्तंभों का, इतिहास दोहराये,
भोगवादी अंधानुकरण में दौड़ने वाले साथियों!...,
अपनी मिट्टी की महिमा के, एक बार गीत को सुनायें।।

❑

6. ईमानदारी का नाम है इज़्ज़त...

ईमानदारी का नाम है, इज्जत।
इन्सानियत का सरताज़ हैं, इज्जत।
मेहनत की कमाई की जो रोटी मिलती है...
उस रोटी की अमिट शान है, इज्जत।।

श्रमिकों के पसीनों में, बसती है, इज्जत।
हिंदोलों के गोरियों में, मुस्काती है, इज्जत।
खेतियों में नित काम करते करते...
मिट्‌टी के संग, महकती है, इज्ज़त।।

पगड़ी के संग, जुड़ी हैं, इज्जत।
साड़ी के संग बंधी है इज्जत।
देहलीज में अक्सर झुककर चलते हैं...,
क्योंकि देहलीज के सुख-दुखों से भरी है इज़्जत।।

समय के साथ, अब बदल रही है, इज्जत।
शान और शौकत में, ढल रही है, इज्जत।
इस दौर में तो अधिकतर झूँठे-बेइमानों को ही...
चार चाँद लगाती जा रही है, इज्जत।।

❑

7. आसमाँ-सी इन्सानियत अब...

आसमाँ-सी इन्सानियत, अब बरसनी चाहिये।
नीर-सी निर्मल पलकें, अब खुलनी चाहिये।
सदियों से सही है, शाषितों ने पीड़ा...
अब घाँवों पर इनके, मरहम लगने चाहिये।।

आसमानी रंगों-सी इन्सानियत झलके।
नीर-सी निर्मल हो, उसकी भीगी पलके।
जीवन को झुलसाती हुई विषमता...
सुखों की हरियाली बनकर दमके।।

मनुष्य के हृदय से करुणा पसीजनी चाहिये।
दीन-दलितों के लिये वह गंगा बननी चाहिये।
पोथियों में लिखी हुई सदियों की संस्कृति...,
एकबार मानवता के सागरों में प्रतिबिंबित होनी चाहिए।।

घरों-घरों में इन्सानियत की, अजान होनी चाहिए।
तिरस्कृत-वंचितों की जिंदगियों में, रोशनी होनी चाहिए।
युगों-युगों से जिन्हें अबला, दरिद्री शुद्र बनाये रखा...
उनके प्रति अब, सम्मान-सहयोग के सच्चे भाव जगने चाहिए।

❑

8. अंधःकार को आलोक में...

अंधःकार को आलोक में, बदलते हैं दीयें।
प्रकाश का पूजन, नित करते हैं दीयें।
अमीरों के महलों और गरीबों की झोपड़ियों में...,
समता की रोशनी, बिखरातें हैं दीयें।।

खुद के लिये कभी, नहीं जलते दीयें।
किसी का भी आलोक, छिनते नहीं दीयें।
अँधेरों में अपना अस्तित्व घुलाकर...
औरों के उजालों के लिए, उम्रभर जीते हैं दीयें।।

प्रार्थना स्थलों की भव्यता हैं, दीयें।
आदमी के कुटिया की दिव्यता है, दीयें।
राजा और रंक, दोनों की मजार पर...,
एक ही पीड़ा से, आँसू बहाते हैं, दीयें।।

ज्ञान की पहली परिभाषा हैं, दीयें।
सन्मार्ग की उत्कट अभिलाषा हैं, दीयें।
हारे, थके और निराश जनों के लिये...
नवजीवन की दीपोत्सवी, आशा है दीयें।

❑

9. रंग मिट जाते हैं...

रंग मिट जाते हैं।
रूप मिट जाते हैं।
मिट्टी से जन्में हुए...
मिट्टी में समा जाते हैं।।

शब्द बस जाते हैं।
अर्थ धस जाते हैं।
जुबान से जन्मे वचन,
दिलों में गढ़ जाते हैं।

फूल खिल जाते हैं।
गंध उड़ जाते हैं।
कुदरत के ये करिश्में,
पल में, यादगार बन जाते हैं।

लोग मिल जाते हैं।
दिल घुल जाते हैं।
जिंदगी के अंज़ान सफ़र में,
यादों के कौंरवें बन जाते हैं।।

❑

10. कदमों को बढ़ानेवाला ही...

कदमों को बढ़ानेवाला ही, मंजिलों को पाता है।
पसीनों को बहाने वाला ही, खुशियों को पाता है।
यह तो कुदरत का करिश्मा है साथियों...
कि, मुसीबतों पर पल-पल मात देनेवाला ही...
अक्सर, आसमाँ की बुलंदियों को पाता है।

शब्दों के साथ चलने वाला ही, शिखरों को पाता है।
सपनों की उड़ानों वाला ही, लक्ष्य तक पहुँचता है।
यह करिश्मा नहीं तो और क्या है!
कि बिना हाथों वाला भी अपना नया इतिहास लिखता है।

पसीनों को बहानेवाला ही, मेहनत का मूल्य जानता है।
भूखों से तिलमिलाने वाला ही, रोटी का स्वाद समझता है।
जिंदगी के तप्त रेगिस्तान में जो बार-बार झुलता है...
वही जल को जीवनदायी समझता है।

पैदल चलने वाला ही, पगडंडियों को पहचानता है।
काँटों से गुजरनेवाला ही, जख़्मों को समझता है।
केवल किनारों पर बैठे रहने से कुछ नहीं होता...
बार-बार गोते लगाने वाला ही, अंत में मोती को गले लगता है।।

❑

11. अज्ञानी आसमाँ का सूर्य...

अज्ञानी आसमाँ का सूर्य बनना होगा।
प्यास भरी राहों का जल बनना होगा।
छल-पाखंडों में डूबते मुसाफिरों के लिये...
मांझी के साथ, अब साहिल बनना होगा।।

अनाथों का साथ बनना होगा।
अपाहिजों का हाथ बनना होगा।
परछाईयाँ भी जिनका साथ नहीं देती...
उन पीड़ितों की पुकार बनना होगा।।

श्रमिकों की मेहनत का मूल्य बनना होगा।
गरीबों के हुनर का सम्मान करना होगा।
अभी तक जिन्हें चिराग नहीं मिल सका...
उन अँधेरी बस्तियों के लिये, आलोक बनना होगा।।

विषमता के वतन में, समता-बीज बनना होगा।
अन्यायी दरबारों में, न्याय के पाठ बनना होगा।
जिनके बरसों बीत गये, आजादी की आस में...
उन पराधीन शक्खों के लिये, स्वतंत्रता सूर्य बनना होगा।।

❑

12. कभी आसमाँ-सी छत...

कभी आसमाँ-सी छत बनकर देखो।
कभी सूरज-सा दिनभर तपकर देखो।
खुद के लिये ही, सारी जिंदगी जीने वालों...
औरों के लिये भी चंद पल बिताकर देखो।।

कभी बादलों-सा बरसकर देखो।
कभी झरनों-सा बहकर देखो।
अपने ही आँगन में आजीवन उगने वालो...
कभी औरों के लिए भी चाँद बनकर देखो।।

कभी बाजरे की बाँसी रोटी बनकर देखो।
कभी बदकिस्मत की तिलमिलाती भूख बनकर देखो।
जूँठी पत्तलें, कूड़ों-करकटों में फेंकने वालो...
कभी जूँठे अनाज का एक निवाला बनकर देखो।।

कभी गरीबों के चेहरों की, रौनक बनकर देखो।
कभी श्रमिकों के दिलों का, संतोष बनकर देखो।
करोड़ों कमाकर भी, परेशान-कंजूस रहने वालो...
कभी पीर-फकीरों की, दरियादिली भी बनकर देखो।।

❑

13. युगों के अंधकार को...

युगों के अंधकार को, जो हरपल मिटाते हैं।
सदियों के संस्कारों को, जो पल-पल सँवारते हैं।
गौरवशाली राष्ट्र के, ये निर्माता हैं साथियों...
जो, ज्ञान का अखंडित आलोक बिखराते हैं।।

अँधेरों के माथों पर उजाले लिखते हैं।
ज्ञान के आसमाँ में सूर्य खिलते हैं।
ये राष्ट्र के रचयिता हैं, साथियों...
जो, अक्सर आदर्शवान पीढ़ी गढ़ाते हैं।।

कठोर काल को, जो कारूणिक बनाते हैं।
पत्थरों सी पीड़ा को, जो पल-पल पिघलाते हैं।
ये संस्कृतियों के सच्चे संवर्धक हैं साथियों,
जो जिंदगीभर संस्कारों के सारथी बनते हैं।।

इन्सानी मिट्टी से, जो अनमोल प्रतिभाएँ बनाते हैं।
शिक्षा-सेतु से, जो जिंदगियाँ सँवारते हैं।
ये जीवन समृद्धि के वे उच्च व्याख्याता हैं साथियों...
जो मुर्दों में प्राण फूँककर लक्ष्य तक पहुँचाते हैं।।

❑

14. पूर्णिमा शरद की...

पूर्णिमा शरद की, प्रीत गगन की।
आँखों में समाई, मूरत मिलन की।
पूर्णिमा शरद की, रोटी किसान की...
मेहनत से नहाई, कमाई गरीब की।।

पूर्णिमा शरद की, रोशनी गगन की।
धरती पर बिखेरी, रश्मियाँ चंद्र की।
पूर्णिमा शरत की, ठंड़क जाड़े की।
ठंड से लड़ती, रजाई किसान की।।

पूर्णिमा शरद की, फसल जवाँर की।
खेतों में झूमती, बालियाँ धान की।
पूर्णिमा-शरत् की, बकरियाँ किसान की।
वनों में घूमती, चाहतें चरवाहें की।

पूर्णिमा शरद की, कजलियाँ किसान की।
गालों पर झूलती, लटे गोरियों की।
पूर्णिमा शरत की, होली आदिमों की।
पहाड़ों में गूँजती, ध्वनियाँ जीवन की।।

❑

15. आसमाँ को साथ लियें...

आसमाँ को साथ लिये, धरती की ओर बढ़ते चलें।
चट्टानों से लड़कर, हरियाली को बिखरतें चलें।
हजारों प्यासे राहगीर हैं, राहों में हमारे...
हम स्वयं जलधारा बनकर, उन्हें नवजीवन देते चलें।।

सच्चाई को साथ लिये, फ़रेब से लड़ते चलें।
अब छलों के जालों को ताड़ताड़ करने चलें।
जालिम झूँठ की उम्र घटाने के लिये...,
नेकियों की उम्रदराज़ करते चलें।।

अत्याचारियों के, मनसूबे तोड़ते चलें।
मुखौटेधारियों के, नक़ाब फाड़तें चलें।
नक़ाबपोशियों की ये दुनिया ध्वस्त करने के लियें...,
हम बाहर-भीतर से, अब एक बनते चलें।।

रंगरैलियों की इस दुनिया में, हकीकत पहचानते चलें।
मतलबी इस संसार में, अपनों के रंग देखते चलें।
जो कभी तुम पर, जान न्यौछावर करने की बात करते हैं...,
समय आने पर कभी, उन्हें भी आजमाते चलें।

❑

16. अनंत आसमां के रंग...

अनंत आसमां के, रंग बने हम।
धरती को जगानेवाले, सूर्य बने हम।
बहुत जी चुके, पाखंड-छल कपटों में...
अब प्राकृतिक सत्यों के, अंग बने हम।।

बरसती बरसात की, बूँदें बने हम।
रात के चकोर की, प्रीत बने हम।
कब तक कैद करते रहे, प्राकृतिक प्रेम को?
हिमालय से निकलनेवाली निर्मल धारा बने हम।।

धरती पर बरसनेवाले, नीले बादल बने हम।
इंद्रधनुष के रंगबिरंगे, आँचल बने हम।
अहं की ही आवाज में आजीवन जीने वालों!
कभी सप्तसुरों के भी सरताज बने हम।।

बच्चों के मुस्कान की, मासूमियत बने हम।
समाज की सक्षम, शख्शियत बने हम।
परायों को भी जो अपनी लगने लगे...
वह अपनेपन की, अहमियत बने हम।।

❑

17. अपनों का आसमां बनाये...

अपनों का आसमां बनायें रखो।
सर पर छाँव सँजाये रखो।
जानलेवा है, ये झिलमिलाती धूप।
जिंदगी की बसेरे बचाकर रखो।।

अपनों की दुँवायें, सँजोकर रखो।
आँचल में आशिष, बाँध कर रखो।
जँहरों से भरी हैं, लोगों की जुबानें।
जरा होठों पर मिठास, घोलकर रखो।।

अपनों की रोशनी, सँभालकर रखो।
खुशियों की पोटली, बनाकर रखो।
लुच्चे-लफंगे भी हैं हमसफर हमारे।
न्याय नीति के मार्ग, इन्हें अपनाकर देखो।

अपनों के अनुभव, आजमाकर देखो।
पीड़ाओं में खुद को, उतारकर देखो।
तमाशबीन है, बहुत सारे आज कल के रिश्ते।
यकीन करने के लिये, इन्हें आँखें खोलकर देखो।

❑

18 इन्सानों को जन्म देनेवाली...

इन्सानों को जन्म देनेवाली नारी है।
संस्कारों को सींचनेवाली नारी है।
खोजे हैं, जिसने कृषि कला कर्मों के कौशल।
वहधरती और आकाश को छुनेवाली नारी है।।

सदियों से संस्कृतियों की, सृजनहार है स्त्री।
युगों-युगों से सभ्यताओं की तारणहार है स्त्री।
प्राकृतिक गरिमाएँ, जिसने नित् उन्नत की है,
विश्व की, वह पहली रचनाकार है स्त्री।।

इस कायनात की, कारीगर है, माँ।
बच्चों के लिए, जीवन संस्कार है, माँ
जिसकी दुवाएँ कभी खाली नहीं जाती,
आशीषों का कालजयी, वह भंडार है, माँ।।

जहाँ को जन्म-देकर भी, उपेक्षित है स्त्रियाँ।
सृष्टि को साकार करके भी, निराश्रित हैं स्त्रियाँ।
अनंत काल से, आदिशक्ति होकर भी,
अन्याय-अत्याचार की, आजन्म शिकार हैं, स्त्रियाँ।।

❑

19. गुलामी की बेड़ियाँ तोड़कर

गुलामी की जंज़ीरों को तोड़कर, देश आज़ाद हो गयें।
शहीदों के खून में रंगकर, देश बलिदानी हो गयें।
जिनके हवाले किये थे, वतन ये सारे,
उनमें से अधिकतर, सत्ता के दलाल बन गयें।

आदिमों के आंदोलन, आजादी की बुनियाद बन गयें।
उलगुलान के स्वर, स्वतंत्रता के बिगुल बन गयें।
वतन के लिए जिन्होंने प्राणों की बाजी लगाई,
वही आदिवासी आज, अवहेलना के शिकार बन गयें।।

शोषितों के संघर्ष, अन्याय के आईने बन गयें।
दुखियों के दर्द, देश के दस्तावेज़ बन गयें।
शांति समृद्धि के एक स्वर्णिम देश में,
आधे से अधिक, लुच्चे और कंगाल बन गये।।

स्त्रियों का सम्मान, सामाजिक दिखावा बनकर रह गयें।
औरतों के आँसू, अधिकतर पत्थर बनकर ज़म गें।
सदियों से जो सभ्यताओं को सँवारती रही,
उस नारी-गौरव के, अनेक हत्यारे बनकर रह गयें।।

❑

20. चाँद पर पहुँचकर मिटा दी...

चाँद पर पहुंचकर, मिटा दी, धरती आसमां की दूरी।
मनुष्य के नवमिशन की, हो रही है तैयारी।
जिन्हें सदियों साथ रखकर भी, दूरस्थ ग्रह बनाया,
उन उपेक्षितों का संपूर्ण उत्थान भी है, अब जरूरी।।

पाषाण स्थित प्रतिभाओं को, पलपल पहचानते रहें।
पर, मनुष्य स्थित मानव को, कई पल बिसंराते रहें।
सदियों से शुरू है, सदाचार का साथ-साथ सफर,
पर मनुष्यता की मंजिल तक, विरले ही पहुंचते रहें।

करोडों वर्षों की कल्पनाएँ, हकीकत मानते रहें।
जो स्वयं दिखाई नहीं देती, उसे शक्तिमान मानते रहें।
पाखंड और कर्मकांड में कितने खो रहे हैं आदमी,
कि अपने दिल और दिमाग को, औरों की देन मानते रहें।

इन्सानों को टुकडों में, बाँटने का काम जारी है।
आदमियों को टुकड़ों पर, नचाने का काम जारी है।
जानवर और इन्सानों में, शायद ही कोई फर्क रह पायेगा,
क्योंकि, गणतंत्र में इन्सानों का, गुर्राने का काम जारी है।।

❑

21. गर्दिशों के बादलों को...

गर्दिशी बादलों को, बरसाकर सूर्य बनो।
अँधेरे आसमां को, रोशनाकर चंद्र बनो।
और कब तक जीते रहोगे, विषमताओं के विचारों में?
इन्सानियत को जगाकर, अब सच्चे इन्सान बनो।।

पीड़ाओं के पहाड़ों पर, गुलशन खिलाने चलो।
बंजर सारी जमीं पर, मधुबन महकाते चलो।
समझी है सच्चाई, जब जिंदगी और जज़्बातों की,
तो इन्सानियत की राहों पर, आगे कदम बढ़ाते चलो।।

मुसीबतों को मात कर, कामयाबी की कहानी बनो।
मंजिलों को चुनकर, खुद भी मंजिलें-मकाम बनो।
भाग्य की लकीरें तो सिर्फ लाचारी है,
अपने हुनर और मेहनत से, मनुष्यता की मिसाल बनो।।

भूखों के लिए, रोटी का एक निवाला बनो।
प्यासों के लिए, पानी का एक घड़ा बनो।
रोज मरते हैं यहाँ लोग, जिंदगी जीते-जीते,
डूबनेवालों के लिए, तिनके का एक सहारा बनो।।

❑

गणतंत्र को गतिमान बनाने...

''गणतंत्र को गतिमान बनाने, साथ सब चलें।
संसद को शक्तिशाली कराने, साथ सब चलें।
फिर से यह वतन, सोने की चिड़िया कहलाएगा,
जरा संविधान की बुनियाद की ओर, साथ सब चलें।''

–'सावन'

22. बर्फ़-सी जमी जिंदगियों को...

बर्फ़-सी जमी जिंदगियों को, सूरज की रोशनी अब जरूरी है।
उजड़ते हुए गाँवों को, बसेरों की भूमि अब जरूरी है।
और कब तक खंडहर बनाते रहोगे, इस भूमि पर?
अन्याय से आतंकित अवनि पर, मनुष्यता की महक अब जरूरी है।

स्त्रियों को सचमुच, सक्षम बनाना अब जरूरी है।
बालिका भ्रूण हत्या, रोकना-रुकवाना अब जरूरी है।
और कब तक प्रदर्शन करोगे, आदिशक्ति के रूप में इनका?
स्त्रियों को सामाजिक-सांविधानिक सम्मान देना जरूरी है।।

अज्ञान की अँधेरों को, मन से मिटाना अब जरूरी है।
पाखंड़ी प्रतिमाओं को, मस्तिष्क से हटाना अब जरूरी है।
और कब तक छलते रहोगे, अपने ही खून को?
विषमताओं के विष को, जड़ से मिटाना अब जरूरी है।।

बेघरों को बँसेरा, बनाना अब जरूरी है।
प्यासों तक पानी, पहुँचाना अब जरूरी है।
और कब तक, कब्जा करोगे प्राकृतिक संसाधनों पर,
सदियों के शोषितों को, समृद्ध करना अब जरूरी है।।

❑

23. हैं अँधेरे चारों तरफ...

हैं, अँधेरे चारों तरफ...
पर तुम्हें दीपक जलाने से, रोका किसने हैं?
हैं, रेगिस्तान सभी तरफ
पर तुम्हें बीज बोने रोका किसने है?

हैं पत्थर, पूरे पथ भर...
पर तुम्हें लाँघकर जाने से किसने रोका है?
हैं कटिली डगर, पूरी मंजिल तक...
पर तुम्हें काँटें, कुँचलने से, किसने रोका है?

हैं चापलूस चारों ओर...
पर तुम्हें, सच्चाई बयां करने से किसने रोका है?
हैं लुच्चे-लफंगों के कलईदार कारनामें...
पर तुम्हें, कलई खोलने के लिये, किसने रोका है?

हैं नकाबपोशों की रंगीन दुनिया...
पर तुम्हें पर्दाफाश करने से, किसने रोका है?
हैं दसों दिशाओं में मुखौटों के किरदार...
पर तुम्हें असली चेहरा दिखाने से, किसने रोका है?

❑

24. अज्ञान के अँधेरे मिटाओ...

अज्ञान की अँधेरे, मिटाओं साथियों।
ज्ञान के उजाले, बिखेरों साथियों।
देश और दुखियों के उत्थान के लिये...
खुद को, 'मानवतादीप' बनाओं साथियों।।

पाखंड़ों के पर्दे हटाओ साथियों।
आडंबरों के अतिरेक मिटाओं साथियों।
अब स्वस्थ समाज के नवसृजन में...
हाथों में, समता की कलमें, थमाओं साथियों।।

काल्पनिकताओं का पूजन, रूकाओं साथियों।
चमत्कारों की कलई अब, उतारों साथियों।
आधुनिक विश्वमानव के नवनिर्माण में...
अब, दिमाग में विज्ञान की दामिनियाँ, जगमगाओं साथियों।।

विचारों की संकीर्णता, मिटाओं साथियों।
संवेदनाओं के क्षितिज, विस्तारों साथियों।
सर्व समावेशक संस्कृति के, नवसृजन में...
अब स्वयं को, संस्कृति शिल्पकार बनाओ साथियों।

❑

25. कभी अँधेरों में जलते दीपक...

कभी अँधेरों में जलते, दीपक बनकर जिओ।
कभी धूप में तपते, पेड़ बनकर जिओ।
बहुत आसान है, अमीरी में भी आँसू बहाना...
पर कभी, दुखी-निर्धन की मुस्कान बनकर जिओ।।

कभी अँधों की, लकड़ी बनकर देखो।
कभी अपाहिजों के, कदमों में कदम मिलाकर देखो।
कितना सरल है तेज गाड़ियों से गंतव्यों तक पहुँचना।
पर कभी शोषितों के सांसों से लक्ष्य तक चलकर देखो।।

कभी बेवा की माँग का, सूनापन समझकर देखो।
कभी तवायफों की तकदीरों की, लकीरे जानकर देखो।
कितना आसान हो रहा है, मर्दों की शादियाँ रचाना...
पर कभी अत्याचारित अनामिकाओं की, शादी रचाकर देखो।।

कभी धर्मों की दुकानों से बाहर निकलकर भी देखो।
कभी रिश्तों के बाजारों से, हटकर भी देखो।
बहुत आसान है, धोखाधड़ी से धन-संपत्ति कमाना...
पर कभी, आदर्श-इमानदारी से थोड़ा-सा नाम कमाकर देखो।।

❑

26. जैसे मिलते हैं जमीन-आसमां...

जैसे मिलते हैं, जमीन आसमां...
वैसे धनिक-निर्धनों का, मिलन अभी बाकी है।
जैसे खिलते हैं सूर्य-चंद्रमा...
वैसे ही शोषित-शोषकों का खिलना बाकी है।।

जैसे उगती है, हरी घास जमीं पर...
वैसे हरियाली किसानों के जीवन में उगनी बाकी है।
जैसे चहकती है, वसंत में कोयल...
वैसे मधुर चहक, पीड़ितों के बसेरों में बाकी है।।

जैसे झरते हैं, झरने जमीं पर...
वैसे प्रेम प्रकार, अनाथों के आँगन में बाकी हैं।
जैसे खिलते हैं वनफूल जंगलों में...
वैसे आदिमों की खुशियों का, खिलना अभी बाकी है।।

जैसे उड़ते हैं सभी पंछी हवा में...
वैसे दमितों की उड़ाने भरना बाकी है।
जैसे बनाते हैं, ग्लोबल इंडिया की तस्वीरें...
वैसी प्रतिमाएँ, पूर्ण होना अभी भी बाकी है।।

❑

27. राष्ट्रीयता की धारा है...

राष्ट्रीयता की धारा है, हिंदी।
संस्कृतियों का किनारा है, हिंदी।
हम करोड़ों देशवासियों के...
आँखों का तारा है, हिंदी।।

राष्ट्रगौरव की गाथा है, हिंदी।
भारतीयता का अटूट नाता है, हिंदी।
विश्व में कीर्ति पताका फहराने वाली...
हिमालय का धवल माथा है, हिंदी।।

त्याग-बलिदान की पहचान है, हिंदी।
सेवा-समर्पण की खान है, हिंदी।
विश्वशांति और मानवता की संदेशदायी...
बुद्धभूमि का अभिमान है, हिंदी।।

ज्ञान-विज्ञान की अब भाषा है, हिंदी।
रोजगार और तकनीकी का लिबास है, हिंदी।
सातों समंदरों पार गुँजने वाली...
सांस्कृतिक समन्वय की, संवाहिका है, हिंदी।।

❑

28. भूख के निवालों का नाम...

भूख के निवालों का नाम है, जिन्दगी।
दानों को जूँटाने का काम है जिन्दगी।
खुद की तमाम खुशियाँ अपनों पर लुँटाकर...
औरों के जिताने का नाम है जिन्दगी।।

सूरज से बरसने वाली आग है, जिंदगी।
धरती-दिनकर का अनुराग है, जिंदगी।
दिनभर धूप में तपने के बावजूद भी...
पेड़ों-पत्तों की शीतल छाँव है, जिंदगी।।

मिट्टी की महकती सुगंध है, जिंदगी।
पानी में जन्मती तरंग है, जिंदगी।
पल-पल हम सभी को नई ऊर्जा देती...
नवजीवन की नवउमंग हैं, जिंदगी।।

कभी मुट्ठी भर चनों का नाम है, जिंदगी।
तो कभी घी की नदियों का धाम है, जिंदगी।
हमारी सोच और कर्मों को आकार देने वाली...
प्रकृति की पारदर्शी प्रतिभा है, जिंदगी।।

❑

29. खुदा खैर करे...

खुशियों की दुवाँ है, खुदा खैर करें।
पीडितों की पुकार है, खुदा खैर करें।
पहले जो गुहार, कभी-कभार लगती थी...
अब वह बार-बार बोलती है, खुदा खैर करे।।

अजानों-सी आवाज थी, खुदा ख़ैर करें।
पीर-फकीरों की फरियाद थी, खुदा खैर करें।
जिसमें बंदे की बंदगी भी धूली थी...
अब निठ्ल्लों की नेकी बन रही है, खुदा खैर करे।।

सौ-सौ चूहें खानेवाले, बिल्लियों की, खुदा खैर करे।
लाखों पाप करनेवाले पाखंड़ियों की, खुदा खैर करें।
मालाएँ जपकर भी, जिनके अंतर्मन मलिन रह गये...
ऐसे गंगा नहाये भक्तों की, अब खुदा खैर करे।।

दांभिकता की दलदल में धंसे हुए की, खुदा खैर करे।
नकाबों के नकली नगरों की, खुदा खैर करे।
औरतों को आदि शक्ति मानकर, जो बंधनों में बंधते रहे।
उस आजाद देश के धर्मों की, खुदा खैर करे।।

❑

30. नाम बदलने में देरी...

नाम बदलने में, देरी नहीं लगती।
काम बदलने में, देरी नहीं लगती।
सत्ता-संपत्ति के मोहजाल में,
इन्सान बदलने में, देरी नहीं लगती।।

रंगों को बदलने में, देरी नहीं लगती।
झंडों को बदलने में, देरी नहीं लगती।
गधों की सल्तनतों में कभी-कभी,
शेरों को बदलने में, देरी नहीं लगती।।

गवाहों के बदलने में, देरी नहीं लगती।
जवाबों के बदलने में, देरी नहीं लगती।
लुच्चे-लफंगों की साजिशों से,
सज़ाएँ बदलने में, देरी नहीं लगती।।

उसूलों से गिरने में, अब देरी नहीं लगती।
वादों से मुकरने में, अब देरी नहीं लगती।
सत्ता के शतरंजी खेलों में,
मोहरों को बदलने में, अब देरी नहीं लगती।।

❑

31. सच्चाई के रंगों को...

सच्चाई के रंगों को, बरसने दो।
अच्छाई के फूलों को, महकने दो।
कब तक जियें, अज्ञान-पाखंड के कोहरों में?
जरा इन्सानियत के इंद्रधनुष को, खुलकर खिलने दो।।

करुणा की लहरें, हृदयों में उमड़ने दो।
समर्पण की सृष्टि, जिन्दगियों में बँसने दो।
कब तक धँसे, हम दांभिकता की दलदल में?
अपने जीवन को सत्कर्मी साहिल से मिलने दो।।

आँखों में अपनापन, थोड़ा-सा झलकने दो।
होठों की पंखुड़ियों से, प्रेम रस टपकने दो।
कैसे जियें हम बनावटीपन के घने कोहरों में...?
जरा आँखों को अपनी, नई रोशनी भरने दो।।

जर्जर जातीयता को, अब खत्म होने दो।
धर्मो की दांभिकता का ध्वंस होने दो।
और कब तक लड़ाये हम, मनुष्य को मनुष्य से...?
जरा मनुष्य का मानवता से मिलन होने दो।।

❑

32. दिमागों का विकास करने वाले बंदर...

खुशियों का विकास करने वाले बंदर, इन्सान बन गये।
और दिमागों को बेचने वाले इन्सान, फिर बंदर बन गये।
इन इन्सानी-बंदरों को, लालची फंदों में बांधकर,
देश में इनके नौटंकीबाज़ मालिक, बेमिसाल मदारी बन गये।।

मालिकों के लिए नाचने वालों बंदर, बंदिबान बन गये।
सूट-बूट पहनाये बंदर, आजाद देश में गुलाम हो गये।
बंदरों को मालिकों ने इस कदर नशा कराई है...
सबकुछ लूँटने के बाद भी, ये मालिकों के सेवक बन गये।।

बंदर अब अदरक के, आशिक हो गये।
मुफ़्त में खाने पीने के, शौकीन हो गये।
अपने मक्कार मालिकों की झूँठी प्रशंसा में,
सबसे सच्चे, सर्वश्रेष्ठ भक्त बन गये।।

मोह माया त्यागने का उपदेश देने वाले, करोड़पति बन गये।
सतसंग के मेले लगाने वाले, भ्रष्टाचारियों के सरकार बन गये।
स्वाधीन देश के ये बिना पूँछ के रंग-बिरंगें बंदर,
मतलब के लिए, पूँछ हिलाने वाले बन गये।।

❑

33. इस देश में दुखियों की खुशी...

इस देश में दुखियों की, खुशी फिर से चाहिए।
इस मुल्क में मासूमों की, हँसी फिर से चाहिए।
यदि सचमुच बनाना है, हमें वतन को सरताज़,
तो इस मिट्टी, में, बुद्ध की महक फिर से चाहिए।।

इस वतन में वज़ूदों की, इज्जत फिर से चाहिए।
इस मुल्क में मेहनतियों की, कीमत फिर से चाहिए।
यदि सचमुच हमें, विश्वविजयिनी बनाना है, वतन,
तो बुद्ध की मानवता, जीवित फिर से चाहिए।।

खेती के किसानों की, कद्र फिर से चाहिए।
सरहदों के सिपाहियों की, शान फिर से चाहिए।
यदि सचमुच बनाना है, तिरंगे को विश्वविजेता,
तो अशोक चक्र की स्वर्णिम, संस्कृति फिर से चाहिए।।

पसीने की कमाईयों को, प्रतिष्ठा फिर से चाहिए।
मेहनत की मंजिलों को, ऊँचाई फिर से चाहिए।
यदि सचमुच महान बनाना है, इस मिट्टी को,
तो जीवन में बुद्ध की सच्चाई फिर से चाहिए।।

❑

34. पंछियों और लहरों की तरह...

पंछियों और लहरों की तरह।
कभी तो हम अपनी जिंदगी जिए...
धर्म, जाति और देशकाल की सरहदें लाँघकर।।

या फिर घमंड और अंजानपन अभिनय में...
हम सभी निकल पड़े हैं...
मनुष्यता को मौतों के हवाले सौंपकर?
प्रेम के पिरॉमिडों की तरह...
कभी तो हम अपनों की हिफ़ाज़त करें...
स्वार्थों के सात समंदर लाँघकर।
या फिर अहं के कुपमंडूपी अँधेरों में...
हम सभी कैद हो रहे हैं...
मकड़ी बनकर मरने को, अपने ही जालों में?

आसमाँ के सूरज की तरह...
कभी तो, हम दिन में चमके, सभी के लिये,
मतलबी बादलों के घने घरों को छाँटकर।
या फिर सिर्फ सूर्यवंशज् कहलाने वाले हम...
सारी उम्र ऐसे ही उल्टे लटके रहेगे,
रातों के चमगादड़ बनकर?

❑

35. रास्ते अपनी जिंदगी...

रास्ते अपनी जिन्दगी, खामोशी में बिताते रहें।
राही अपनी मंजिले, तेजी से हासिल करते रहें।
जीवन भर साथ निभानेवाले कुछ लोग ही...
राहों के लिए, पेड़ों की छाँव बनते रहे।।

मतलबी मंजिलें, अक्सर जमीं को मिटाती रही।
जिनसे जन्मी हैं, उन्हीं की जान पर उठती रही।
मगरूर मंजिलोंवालों के कारनामें तो देखे...,
मन्नतवालों की जमीनें, उनसे बेदखल होती रही।।

कश्तियाँ बनाने वाले कारीगरों की, कीमत कहाँ रही?
नाव चलानेवाले नाविक की, हिम्मत कहाँ रही?
यंत्रों के हाथों में, कैद जिंदगी और मौत,
कुदरत की वह करिश्माई, कहाँ खोती रही?

डालियों के दर्द की, दवाँ कहाँ रही?
फूलों की पीड़ा की, दुवाँ कहाँ रही?
कायनात की भी कीमत, वसूल रहे हैं सौदागर,
चाँदनी रात की वह झिलमिल, कहाँ सिमटती रही?

❑

36. गणतंत्र को गतिमान बनाने...

गणतंत्र को गतिमान बनाने, साथ सब चलें।
संसद को शक्तिशाली कराने, साथ सब चलें।
फिर से यह वतन, सोने की चिड़िया कहलाएगा,
जरा, संविधान की बुनियाद की ओर, साथ सब चलें।

परपीड़ा को परखने, साथ सब चलें।
परवेदना को समझने, साथ सब चलें।
यह भूमि त्याग की, फिर सरताज होगी,
जरा, गेरुए रंग में रंगने, साथ सब चलें।

सत्य को बचाने, साथ सब चलें।
पाखंड को मिटाने, साथ सब चलें।
फिर से यह वतन, विवेकवान होगा,
जरा, विज्ञान के सूरज उगाने, साथ सब चलें।

आजादी के जश्न मनाने, साथ सब चलें।
तिरंगा मन में लहराने, साथ सब चलें।
विश्वविजयी होगा, फिर से देश हमारा...
जरा, बुद्ध के पाठ, पढ़ते-पढ़ाते, साथ सब चलें।

❑

37. इन्सानियत की राहों पर...

इन्सानियत की राहों पर, आगे बढ़ते चलो।
सतकर्मों के परचम, नित लहराते चलो।
रेगिस्तानों को, मधुबन में बदलने के लिए।
जिंदगी में खुद सावन, बनते चलो।।

जिंदगियों के पन्नों पर, सच्चाई की दास्ता लिखते चलो।
मानवता की किताबों से इन्सानियत के पाठ पढ़ाते चलो।
जहाँ डाल-डाल पर कभी बैठती थी, सोने-सी चिड़िया,
उस मधुबन की, अब फिर से अमन बनाते चलो।।

जिंदगी के रेगिस्तान को गुलशन बनाते चलो।
पीड़ाओं के पहाड़ों पर, मधुबन खिलाते चलो।
गुम हो रही है, जो खुशियां हमारी,
मेहनत और मुस्कान से उन्हें,गले लगाते चलो।।

जमीन से अपनी जड़े, बढ़ाते चलो।
सभी पर अपनी छाँव, फैलाते चलो।
प्रेम-शांति की इस महान मिट्टी में,
बदगद और बोधिवृक्ष बनकर, जीते चलो।।

❑

38. अब कोई नया दौर ऐसा...

अब कोई नया दौर, ऐसा भी शुरू किया जायें।
जिस में आदमी का अज्ञान, जड़ों से मिटाया जायें।
जनता को लूँट रहें हैं, शोषण और पाखंड से।
इन फरेबी चेहरों से, नकाब सारे उतारें जायें।।

अब कोई कारवाँ, नया ऐसा भी चलाया जायें।
जिसमें सामान्यों की समस्याओं को, सचमुच सुलझाया जायें।
दो वक्त की रोटियों के लिए, जो जूँझते हैं जिंदगी भर,
देश के इन दुखी चेहरों पर, सुकुन ज़रूर खिलाया जाये।।

अब कोई मिशन नया, ऐसा भी शुरू किया जायें।
जिसमें गरीबों के गुनाहगारों को, सजा जरूर दी जायें।
गरीबी हटाव के नाम पर, जो भरते रहें अपनी तिज़ौरियाँ,
गरीबों की इस दौलत से ही, गरीबी अब हटाइ जायें।।

अब कोई संकल्प नया, ऐसा भी किया जायें।
मनों से जातियता का, विष सारा फेंका जाये।
विषमताओं की बीन से, जो बनाते रहे इन्सानों का साँप,
इन जहरीले इन्सानी-साँपों के, फन सारे कुँचलें जायें।।

❑

39. मेहनती हाथों को मनचाहें...

मेहनती हाथों को मनचाहे, अब काम चाहिए।
बेरोजगारों को अपने हुनर का, सम्मान चाहिए।
गड़े मुर्दे उखाड़कर, गणतंत्र को गुमराह न करो,
यहाँ जिंदे इन्सानों को जीने की, सही राह चाहिए।।

कुदरत की हरियाली में, अब जिंदादिली चाहिए।
पत्तों–पत्तों में प्रेम का, नया अहसास चाहिए।
अपने विषैले व्यवहार से, प्रकृति को अपाहिज न करो,
सूखती जड़ों से, अब जिंदगी की नई बहार चाहिए।।

गर्दिशों के गणतंत्र को, अब बहती बेईमानियों से बचाना चाहिए।
पीड़ित प्रजा की वेदनाओं को, सक्षम वाणी मिलनी चाहिए।
अधिकार होकर भी और कब तक जिएं बिवंचनाओं में?
अँधेरे आशियानों के लिए, अब स्वतंत्रता की सुबह मिलनी चाहिए।।

गौरवशाली गणतंत्र को, अब गर्दिशों से बचाना चाहिए।
बेदर्दी बादलों को, आसमाँ से हटाना चाहिए।
और कब तक बली बनते रहोगे, आतंकी अँधेरों के?
अब सच्चाई के सूर्यों को, दिमागों में जलाना चाहिए।।

❑

40. प्रजा के हुनर ने ही प्रजातंत्र...

प्रजा के हुनर ने ही, प्रजातंत्र को सँजाया है।
श्रमिकों की शक्ति ने ही, राष्ट्र को चलाया है।
निर्धन-गरीबों की, कभी उपेक्षा मत करना,
क्योंकि दीन-दुखियों के उत्थान के लिए, गणतंत्र बनाया है।

जन्मजात हुनर ही, जनतंत्र की पहचान हैं।
करोड़ों कारीगरी हाथ की, राष्ट्र के आधार हैं।
पाप-पुण्य के फेरों में, बंधती नहीं प्रतिभाएँ।
बिना हाथों वाले भी, वतन के सरताज़ हैं।।

पीड़ित जन प्रजातंत्र में, भूखे पेट खड़े हैं।
मुसीबतों से पल-पल, साहस से ये लड़े हैं।
राष्ट्र हमारा हमेशा बलशाली बना रहें,
इसलिए सर्वहारा शक्ति बनकर आगे बढ़े हैं।।

प्रजातंत्र में पत्थर भी, तराशें जाते हैं।
शोषितों के सपने भी, साकार किये जाते हैं।
अद्भुत शक्ति समाई है, संविधान में,
जहाँ दुखियों के दर्द, देश के दर्पण बन जाते हैं।।

❑

41. दीपों उत्सवों में कभी...

दीपों के उत्सवों में कभी, अंतर्मन के दीपक जलाइएँ।
खुशियों की बौछारों में कभी, औरों पर खुशियाँ लुँटाईएँ।
अभी भी शेष हैं, अँधेरे अमानुषता के,
संविधान के सूर्य से, अब नई स्वर्णिम सुबहें खिलाइएँ।।

सिकुड़ते हुए शरीरों से, चेतना अब बचाइए।
सूखते हुए दिमागों से, प्रजा को अब बचाईए।
सिर से पाँव तक, बंजर बन रहा है आदमी,
इन्सानियत नाम की हरियाली, आदमी से अब बचाइएँ।

उजालों में दियें, अब ना जलाईए।
अँधेरों से खुद को, दूर और ना भगाइए।
कब तक भागते रहेंगे हम, अपने ही बनाये अँधेरों से?
अपने ही अँधेरों में, अब आलोक बिखराँईएँ।।

भरपेटवालों को अब, और ना खिलाइए।
मक्कार-भ्रष्टाचारियों को, अब सर पर ना बिठाइए।
लूँटकर खा रहे हैं, लुच्चे-लफंगे वतन को,
सच्चाई की लड़ाई से, महान देश को बचाइए।।

❑

42. गणतंत्र के गर्दिशों को...

गणतंत्र के गर्दिशों को, हटाना बहुत जरूरी है।
प्रजातंत्र को पावस में, भिगोना बहुत जरूरी है।
अकाल और अमानुषता की दरारे न हो जमीं पर,
दम तोड़ती इन्सानियत को, अब बचाना बहुत जरूरी है।।

गर्दिशों में खोये गणतंत्र को, संविधान का सूर्य जरूरी है।
पारंपरिक पाखंड के पर्दाफाश को, संविधान की शक्ति जरूरी है।
यदि सचमुच करना है, मनुष्य और मनुष्यता का उत्थान,
तो संविधान का सेतु, बनाये रखना बहुत जरूरी है।।

दुनिया के चेहरों पर, मनुष्यता की मुस्कान जरूरी है।
विनियोग के मुहरों पर, विश्व का विकास जरूरी है।
और कब तक छिपते-छिपाते रहेंगे, नकाबों में लोग?
अब अपनी-अपनी असलियत, दिखाना भी जरूरी है।

सभी की स्वतंत्रता का सम्मान, बनाये रखना जरूरी है।
हक और कर्त्तव्यों का अहसास, जगाये रखना जरूरी है।
यदि सचमुच चाहते हैं हम, प्रजातंत्र का उत्थान,
तो सच्चे संविधान के मार्ग पर, सभी को चलना जरूरी है।।

❑

गर्दिशों के गणतंत्र में

''गर्दिशों के गणतंत्र में, देश बिखर जाते हैं।
साज़िशों के शिकंज़ों में, लोग कुचल जाते हैं।
जिस बुनियाद पर बने हैं, मूल्य और आदर्श,
उस नींव को अपने ही सुरंग लगाते हैं॥''

–'सावन'

43. भूखों के आँगन में लोग...

भूखों के आँगन में, लोग भाषण सुनाने लगे।
शोषितों के सपनों में, लोग आग लगाने लगे।
सच्चाई की नजरों को गिरवी रखकर लोग,
खुद लुँटकर भी खुशियों के ढोल पीटने लगे।।

कामचोर भी अब, कर्मों की परिभाषा बताने लगे।
मक्कार भी अब, मूल्यों का महत्व समझाने लगे।
गणतंत्र के क्षितिजों पर ये, कैसी सुबहें खिली?
यहाँ दीये भी अब, सूर्यों को नीचा दिखाने लगे।।

अंधों के शहरों में, अब आईने बिकने लगे।
लोगों के इमान पोस्टरों पर छपने लगे।
स्वार्थी स्वतंत्रता का यह कैसा दौर आया?
इसमें लोगों के दिमाग भी, गुलाम बनने लगे।।

चापलूसी के दौर में चमचे, आसमान छूने लगे।
पाखंड़ी मालिकों को, पहाड़ पुरुष सिद्ध कराने लगे।
प्यासा प्रजातंत्र, समस्याओं से बेचैन होने लगा।
और नौटंकीबाज, अपनेआप को, महासागर कहने लगे।।

❑

44. गिरगिटों की गलियों में...

गिरगिटों की गलियों में, आस्था के रंग बिखेरने लगे।
मगरमच्छों की आँखों में, आदर्शों के मोती झरने लगे।
विकलांग श्रद्धाओं के इस स्वार्थी दौर में, साथियों...
यहाँ के आजादों को भी, गुलामी में सुकुन आने लगे।।

पाखंड़ियों के प्रवचनों में, पुण्यों के हिसाब होने लगे।
मतलबियों के मेलों में, मूल्यों के विचार होने लगे।
सौ-सौ चूहें खाकर भी,
बिल्ले-बिल्लियाँ हज़ पर साथियों जाने लगे।

लफंगों के लब्जों पर, भरोसे के व्यवहार होने लगे।
विश्वास जताने के लिए, लुँटेरों की हामी देने लगे।
बड़ी मेहनत और मुद्दतों से जिसे सरताज़ बनाया,
उसी को ठग कर लोग, रहनुमा बनने लगे।।

पैसों की लालच में, अब पुश्तैनी मकान बिकने लगे।
धन की लालसा में, खेती-बाड़ियाँ उजाड़ने लगे।
वर्तमान समय के इस विकलांग युग में...
अनेकों बच्चे और बूढ़े, लावारिस बनकर जीने लगे।।

❑

45. करेलों ने स्वाद से कहा...

करेलों ने स्वाद से कहा, अब मीठे बनो।
मधुरता का मौसम आया है, मीठे बनो।
भले ही हो हम, जड़ों से पत्तों तक कड़वाहट में डूबे,
स्वाद सरताज बनाना है, अब मीठे बनो।।

मगरमच्छ ने आँसूओं से कहा, अब बहना सिखो।
दिखाने के दिन आये हैं, अब बहना सिखो।
हालांकि रोना, मगरमच्छ का काम नहीं है।
पर शिकार, खुद मुँह तक आ रहे हैं, अब रोना सिखो।।

भेड़ियों ने अपने भेस से कहा, महात्मा बनो।
महानता की बातें बतानी है, अब महात्मा बनो।
भले ही हो हम जन्म से, झूठ और कपटी,
पर सदाचार के शोज कराने हैं, अब महात्मा बनो।।

नीम ने निमौलियों से कहा, अब जायकेदार बनो।
आमों से बढ़कर, अब तो जायकेदार बनो।
भले ही हो हमारा वंश, कड़वाहट की जड़ों पर पला...
पर मधुबन के बादशाह बनना है, अब जायकेदार बनो।।

❑

46. उजालों की बस्तियाँ...

उज़ालों की बस्तियाँ, अँधेर नगरी बनती रही।
बुनियादी संस्कृतियाँ, खंड़हर बनती रही।
सदियों से जिसने, सभ्यता की सुगंध फैलाई,
आज विकृतियों की बदबु से, अपनी पहचान खोती रही।।

ज्ञान की नगरियाँ, अज्ञानियों की कठपुतलियाँ बनती रही।
सत्य की शाश्वत बातें, पाखंड़ में बदलती रही।
जिन ग्रंथों ने समता और बंधुता के संदेश दिये,
उनके शब्दों की भावनाएँ भी, अब पहले जैसी नहीं रही।।

ईमान की जमीन पर, बेईमानी पनपती रहीं।
सच्चाई की हवा भी, जहरीली बनती रहीं।
भोली जनता की किस्मत और कमाई को,
पाखंड़ियों की, जालसाजी लूँटती रही।।

रिश्तों की उदारता, स्वार्थ से सिकुड़ती रही।
दिलों की विशालता, लोभ में सिमटती रही।
जीवन की हमारी खुशनूमा खुशबू,
बनावटी उसूलों से खत्म होती रही।।

❑

47. सच्चाई के मेलों में...

सच्चाई के मेलों में, झूँठों की दुकान सँजने लगी।
बेईमानों की तिजौरियों में, ईमानदारी कैद होने लगी।
भूमंडीकरण के भ्रष्ट बाज़ार क्या खुलें!
नौटंकीबाजों की कीमतें बढ़ने लगी।।

बुद्ध की भूमि पर, बदमाशों की वाह-वाह होने लगी।
शोषकों के शिकंजों में, शराफत आहें भरने लगी।।
चोर उचक्कों की तो तकदीरें ऐसी चमकी,
कि देश की जनता भी, आँखें फाड़कर देखने लगी।।

क्रुरकर्मियों की कामयाबी, प्रेरणा बनने लगी।
हैवानों की हैवानियत, स्वार्थ सधने लगी।
अन्याय-अत्याचारों के खिलाफ, जब भी जनता जुटी,
धर्म और दहशत के नाम पर, वह गुमराह होने लगी।।

मार्केट की महँगाई, असमान छुने लगी।
पसीने की कमाई, जरूरतें निगलने लगी।
गरीब-निर्धनों की पीड़ाओं का क्या कहें?
उन्हें तो पावभर रोटी भी, ईद का चाँद लगने लगी।।

❑

48. मतलब के अँधे होकर...

मतलब के अँधे होकर, और कितने साल जिओंगे?
बदनामी के धंदे कराकर, और कितनों को लूँटोगे?
धिक्कारती तो होगी ना, कभी ना कभी अंतर्रात्मा तुम्हारी...
फिर भी पाखंड़ों की यह दुकानदारी, और कितनी पीढ़ियाँ चलाओंगे?

कुपमंडूप बनकर, और कब तक टर्राओंगे?
कुओं को ही समंदर, कब तक सिद्ध कराओंगे?
करोड़ों दुकानें खोली अधर्म की, इन बाजरों में...
अब मानवताधर्म का झंडा उनपर कब फहराओंगे??

धर्म के नाम पर, और कब तक लड़वाओंगे?
भगवान के नाम पर, कब तक फुट डलवाओंगे?
सात पीढ़ियों की जायजाद, खुद कमाई है कुछ पाखंड़ियों ने,
अधर्मों के ये बाज़ार, और कब तक भरवाओंगे??

आदमियों में भेदभाव, और कब तक करवाओंगे?
स्त्रियों पर अत्याचार, कब तक चलवाओंगे?
गणतंत्र और संविधान के समतावादी युग में भी,
तुम्हारी विषमता और विकृतियों की जड़े, कब तक फैलाओंगे??

❑

49. अँधेरों को मिटाने वाले वें...

अँधेरों को मिटानेवाले वे दियें कहाँ गयें?
उजालों से जगमगातें आँगन कहाँ गये?
वतन की मिट्टी ने जिन्हें खुद बनाया था...
वे, ओरों पर मर-मिटने वालें इन्सान कहाँ गयें?

अन्नदाताओं के आँसुओं की, कीमत कहाँ गई?
सिपाहियों के शहादत की, कद्र अब कहाँ गई?
युगों-युगों तक, जिसने वतन की शान बनायें रखीं...
देश की वह मजबूत बुनियाद, अब कहाँ गई?

औरों के आँसुओं को, अपनाने वाली वे आँखें कहाँ गई?
दूसरों के खुशियों की वे बातें कहाँ गई?
दिन के अथक परिश्रम के बाद भी लोग थकते नहीं थे...
वे सुनाई जानेवाली, लोककथाओं की रातें कहाँ गई?

अतिथियों का, वह सम्मान कहाँ गया?
रिश्तेदारों का, पहला अभिमान कहाँ खो गया?
सदियों से जिसे सजगता से सँभाल रखा...
वह युगों का संस्कार अब किस राह भटक गया...?

❑

50. करोड़ों कैलेंडर्स बदलायें...

करोड़ों कैलेंडर्स बदलायें, लोगों ने अपनी जिंदगियों के।
एक पल के लिये, भी खुद को बदल नहीं पाये।
सैंकड़ों पोथियाँ लिखते रहे, सदियों से लोग...
पर पलभर के लिये भी, प्रेम की सच्ची परिभाषा कर नहीं पाये।।

युगों-युगों से, जिंदगियां में दौड़ रहे हैं लोग...
सिर्फ सुखों की प्राप्ति के लिये।
अफसोस... और अचरज कि, एक पल भी नहीं इनके पास...
अब सन्मार्ग पर, चलने के लिये।।

कठपुतलियों की तरह, नाच रहे हैं करोड़ों लोग...
सिर्फ भौतिक सामग्रियों को, हथियाने के लिये।
एक लम्हा भी नहीं बचाकर रख पाये यें...
अपने अंतर्रात्मा की आवाज सुनने-समझने के लिये।।

मुखौटों के बाजार में, भीड़ की बाढ़ इतनी उमड़ पड़ीं...
कि खुद के असली चेहरे भी लोगों ने बेच दिये।
रंगरलियाँ और प्रदर्शनों ने ऐसे जलवें बिखँरें...
कि सदियों के संस्कार भी लोगों ने नीलाम कर दिये।।

❑

51. हकीकत कुछ और होती...

हकीकत कुछ और होती है।
दिखावा कुछ और होता है।
जलते तो हैं, खुद तेल और बाती...
पर नाम तो दुनिया में सिर्फ, दीपक का होता है।।

रुतबा कुछ और होता है।
सुलुख कुछ और होता है।
प्रदर्शनकारी पूजा-पाठ के भक्तों में...
ठगी-मक्कार ही सबसे आगे होता है।।

सच्चाई की जीत होती है।
झूँठ की हार होती है।
काँटों और दुखों से भरी इन राहों पर...
लुच्चे-दलालों की दुकाने सँजती होती है।।

देशवासियों के लिये, आदर्श सरकारें होती हैं।
गोर-गरीबों के लिये आधार योजनाएँ होती हैं।
देश को ही बेचकर खानेवाली श्रेणियाँ...
समय-समय पर गरीबों का भी खून चूसती होती हैं।।

❑

52. कब तक जिओंगे कूपमंडूपों...

कब तक जिओंगे कूपमंडूपों की तरह...?
अब अँधेरे कुपों से बाहर आकर जियो।
सदियों से उपेक्षित मनुष्यता के पुर्नउत्थान के लिये...,
अब मानवता के महासागर बनकर जिओ।।

बड़ा कठिन है बंदिस्त कुपों का, खुले सागरों से मिलना।
संकीर्ण घेरों से निकलकर, विशालता को स्वीकारना।
अपनी काल कोठडियों को ही साम्राज्य मानने वाले कुपों!...
और कितनी सदियों में तुम्हें अँधेरों का है त्यागना?

कुपों के मंडूप मानो, जन्म से ही ज्ञानी होते हैं।
विशेष कुछ न करते हुए भी, ध्यानी होते हैं।
कुएं के मेंढक, कुप को ही कायनात समझते हैं।
इसलिये महासागरों का खयाल भी, मन में नहीं लाते हैं।

कुपमंडूपों! तुम्हारी ही वृत्तियों से बर्बरता बनी हुई है।
तुम्हारी ही प्रवृत्तियों से पाखंडी शक्तियाँ पली हुई है।
ऐसी नीच-नालायक उपलब्धियों में उन्मत मंडूपों!
तुम्हारे कुओं का परम्परागत पानी, अब सूखने बारी आई है।।

❑

53. बरसों पहले का कोरोंटाईन...

बरसों पहले का कोरोंटाईन, याद आता है।
मनुष्यों को मनुष्यों द्वारा, दूर रखा, याद आता है।
गाँवों के बाहर, बंदिस्थ थी जिंदगियाँ वंचितों की...
तिरस्कृतों का, परम्परागत दुख-दर्द, याद आता है।।

पानी की एक बूँद के लिये तड़फना, याद आता है।
अनाज के दानों के लिये तरसाना, याद आता है।
निर्धन शोषितों की झोपड़ियों को...
जातिगत घमंड के कारण जलाना, याद आता है।।

रोटी के टुकड़ों के लिये लकड़ियाँ चिराना, याद आता है।
घूँट भर पानी के लिये कोल्हू का बैल बनाना याद किया है।
गुलामों की तरह, बना दी शूद्रों की जिंदगी...
ऊपर से उन्हें 'हरिजन' कहलाना, याद आता है।।

शूद्रों के मुँह पर, बाँधा लोटा याद आता है।
पैर के निशान मिटाने, कमर में बाँधा झाड़ू याद आता है।
शिक्षा, स्वाभिमान और संपत्ति से सालों वंचित रखा सभ्यों ने...
ऊपर से उनके 'अशिक्षित गँवार', कहलाना याद आता है।।

❑

54. गिरगिटों के गणतंत्र में...

गिरगिटों के गणतंत्र में, भेड़िए बादशाह बन गयें।
चुरा कर शासन शेरों का, दगाबाज़ बन गये।
जिन गिरगिटों ने, गधों को चुनकर दिया,
ये गधे ही गणतंत्र के, कलंक बन गये।।

गिरगिटों के गणतंत्र में, रक्षक ही भक्षक बन गये।
आसूँ बहाने वाले मगरमच्छ, मनुष्यता की मिसाल बन गये।
अत्याचारियों की गठबंधन तो देखें,
बस्तियाँ जलाने वाले बंदर ही, मददगार बन गये।

गिरगिटों के गणतंत्र में, चोर अब साहूकार बन गये।
निकालकर दिवाला बैंकों का, विदेश में फरार हो गये।
जिन गरीबों की खून-पसीने की पूँजी लूँटी,
वे गरीब मौत को गले लगाने, मजबूर हो गये।।

गिरगिटों के गणतंत्र में, निकम्मे नामदार बन गये।
तलवे चाटकर अपने मसीहाओं के, मालामाल बन गये।
जो किसान-मजदूर अपने खून से, देश सींचते रहें...
वे दो वक्त की रोटियों के लिए, मौताज़ बन गये।।

❑

55. सावन को भी कभी हमारे...

सावन को भी कभी, हमारे आँगन में बरसने दो।
बूँदों की भी, कभी, खपरैलों पर हमारे खेलने दो।
कब तक रोक रखेंगे प्रकृति का उन्मुक्त पानी?
जरा बरसाती झरनों को भी, हमारे खेतों में झूमने दो।

आमों को भी कभी, हमारे पेड़ों पर महकने दो।
डालियों को भी कभी, झूलों से झूलने दो।
कब तक काँटते रहेंगे, आम्रवन हमारे?
जरा मुरझायें इन पौधों को, खुली हवा में खिलने दो।।

खुशियों को भी कभी, हमारे जीवन में किलकारने दो।
उमंगों को भी कभी, हमारे उरों में उठने दो।
कब तक और करोंगे, हमें गरीबी के तालों में?
जरा अमीरों के अंतःकरणों की, अमीरी को देखने दो।।

मानवता के महासागरों को भी कभी, महसूस करने दो।
समता की लहरों को भी कभी, एक बार चूमने दो।
कब तक ठगते रहोंगे, देश की मासूम जनता को?
जरा, गणतंत्रिय गरीबों का, थोड़ा-सा तो विकास होने दो।।

❑

56. मानसिक गुलामी में...

मानसिक गुलामी में, जी रहे हैं लोग।
भेदभाव की भांग, पी रहे हैं लोग।
शाश्वत सत्यों को नजरअंदाज़ करके,
पाखंड़ को, सर आँखें पर, बिठा रहे हैं लोग।।

आसमाँ में उड़ानें, भर रहे हैं लोग।
जमीं में दरारें, कर रहे हैं लोग।
ढोंगी पाखंड़ियों की, पहचान तो देखो,
मुँह में राम और बगल में छुरी रख रहे हैं लोग।।

जमीं को बंजर बना रहे हैं लोग।
नदियों पर खंज़र, चला रहे हैं लोग।
बेइमानों की बदमाशियों के, कारनामें तो देखें!
ज़हरीली बरसात गिरा रहे हैं लोग।

धरती को लहुलूहान, कर रहे हैं लोग।
अंबर का मंज़र, बदल रहे हैं लोग।
करोड़ों काली करतूतें छिपाकर,
खुद को सूरज, साबित कर रहे हैं लोग।।

❑

57. कितनी अद्‌भुत सोच है...

कितनी अद्‌भुत सोच है, हम इन्सानों की!
पल-पल परतें बदलती हैं, खयालों की।
अपने और परायों की कसौटियों पर ही...
साकारती है दुनिया, मतलबी रंगों की।।

कितनी विकृतियाँ हैं, इन्सानों के नकाबों की।
सफेदपोशों में छिपी हैं स्याही, काले करतूतों की।
अब तो भोगों के लिये ही, शायद मची है होड़...
एक के बाद एक देवी-महाराज बनने की।।

कितनी पाखंड़ी-प्रवृतियाँ हैं, आज के इन्सानों की!
पत्थरों की मूर्तियों को चम्मच से दुध पिलाने की।
प्यासों से पानी और भूखों से निवालें छिनकर...
अपने झूँठ-मूठ के, दातृत्व के ढिंढोरे पिटने की।।

कितनी दांभिकता है, दर्द महसूस करने की!
अपनों के ही दर्द पर, मिनटों में मरहम लगाने की।
और परायों की पीड़ाओं को नौटंकी समझकर,
पल-पल उनके जख़्मों को, हरा करते रहने की।।

❑

58. मनगढंत-मतलबी बातों में...

मनगढंत-मतलबी बातों में, घिरने लगे लोग।
मकड़ी की तरह जालों में, अब फँसने लगे लोग।
क्रांति सूर्यो की, इस उर्जावान भूमि में...
अपना तेज गवाँकर, जन्म लेने लगे लोग।।

केकड़ों की तरह, अब जीने लगे लोग।
अपनों की ही टांगे, अब-खींचने लगे लोग।
त्याग-तपोवन की इस भूमि पर...
अब भोग और लोभ को, सराहने लगे लोग।।

मतलब के लिये, मिट्टी खाने लगे लोग।
लालच के नशों में, नाचने लगे लोग।
शांतिदूतों की इस बुद्धभूमि में...
अब घर-घर महाभारत, मचाने लगे लोग।।

इन्सानों को टुकड़ों में बांटने लगे लोग।
हैवानों की रोटियों पर अब, पलने लगे लोग।
इन्सानी दिमागों को, अब गिरवी रखकर...
पालतु कुत्तों की तरह, भौंकने लगे लोग।।

❑

59. मकड़ी के जालों में ही...

मकड़ी के जालों में ही फँसे हुए हैं, लोग।
केकड़ों की पकड़ में ही धंसे हुए हैं, लोग।
बरगद और बोधीवृक्षों की इस महाभूमि पर...
अब बोन्साई बनकर, उगने लगे हैं लोग।।

अपनों की ही टाँगे, खिंचे हुए हैं, लोग।
घुँटनों के ही बल पर, रेंगे हुए हैं, लोग।
विशाल व्यक्तियों के इस समृद्ध वतन पर...
अब तलवे चाँटने में तल्लीन हुए हैं, लोग।।

अपने नामों को बदलाने में, लगे हुए हैं, लोग।
असली नाकों के शरीर में, छिपाये हुए हैं, लोग।
ज्ञानी और दानियों की इस पुण्य भूमि पर...
अपनी मगरूरी के ढिंढोरे पिटे हुए हैं, ये लोग।।

बिना माचिस के भी, अजनबियों से जलते हैं, लोग।
बेवज़ह अपनों से भी, ईर्ष्या करते हैं, लोग।
बोधिसत्वों और युगनायकों की, इस तपोभूमि पर...
अब कूपमंडूप बनकर, जिंदगी जीते हैं, लोग।।

❑

60. हुकुम मेरे आका!

पहले एक ही गुलाम, और एक ही आका होते थे।
अब तो जितने गुलाम, उतने ही आका बनते हैं।
गुलामों-आकाओं की आबादी, इस कदर बढ़ती गई...
अब तो हर आँगन में, 'हुकुम' मेरे आका स्वर गूँजते हैं।।

अब तो अपने ही आका, अपने ही गुलाम हैं।
काम भी उन्हीं के होते हैं, जिनके सलामों पर सलाम है।
आकाओं के भी ऐसे ऐसे नामचीन दलाल हैं...
जो ओहदे से तो सेवक पर काम से शोषक हैं।।

हुकुम करनेवाले आकाओं के अनोखे हुक्म है!
देशी चिरागों में गुलाम हर शक्ख हैं।
गुलामी का इन गुलामों को इतना बड़ा गर्व है,
कि आजादी-अधिकार छिननेवालों के, मनाते ये पर्व हैं।।

आका अब आधी उम्र तक, चिराग घिसते हैं।
अपने रहनूमा जीनों के नाम, पलपल जपते हैं।
ईमान अपने, ताउम्र गिरवी रखकर,
जीनों की जिन्दगी भर, जी-हुजूरी करते हैं।।

❑

61. नीले छत के तले, लोग...

नीले छत के तले, लोग लहुलूहान होने लगे।
अधर्म के नशे में, खून के प्यासे होने लगे।
जिन्हें आदि शक्ति के रूप में, पूजने का पाखंड किया,
उन स्त्रियों को गाँव भर में, बेइज्जत करने लगे।।

विषमतामयी ग्रंथों पर, लोग गर्व करने लगे।
अत्याचारों के आईनों से, घर सँजाने लगे।
भरी सभा में, द्रौपदी को निर्वस्त्र करनेवाले ही,
अब खुले आम रास्तों पर, उसकी इज्जत उछालने लगे।।

सिपाहियों के खून से, राष्ट्र रक्तरंजित होने लगे।
बेवाओं की माँग से, जीवन सूने होने लगे।
जिन आँखों में सँजे थे, सुख-समृद्धि के सपने,
वे नयन अब, आँसूओं के समंदर होने लगे।।

रोजगार की तलाश में, कारवें निकलने लगे।
नौकरी की खोज में, बेरोजगार घूमने लगे।
शिक्षा के कागजों के, ऐसे कारनामे हुए,
जिन में कोई कंगाल, तो कोई मालामाल बनने लगे।।

❑

62. मतलबी अंधे समाज को...

मतलबी अँधे समाज को, आईनों की कीमत क्या?
सुखभोगी समुदाय को, परपीड़ा की कीमत क्या?
सदियों से जिन्होंने, स्त्रियों का शोषण किया,
उन लूँटेरों को, नारी सम्मान की कीमत क्या?

मतलबी अँधे समाज को, सच्चाई दिखाई देगी क्या?
जन्मजात दुराचारियों को, अच्छाई दिखाई देगी क्या?
बरसों से जो, छल-कपट से फाँसों में जीते रहे...
उन्हें, सदाचरण की स्वच्छंदता, दिखाई देगी क्या?

पाखंड़ी परिवारों की, परम्परा खंड़ित होगी क्या?
ढोंगी-दांभिकों की, मात्रा कम होगी क्या?
युगों से लूँटनेवाले, इन नौटंकीबाज़ों से,
भोली-भली जनता की, सचमुच रक्षा होगी क्या?

इक्कीसवी सदी में भी, वशीकरण मंत्र जरूरी है क्या?
लाखों-करोड़ों की गाड़ियों में, टोने टोटकें जरूरी है क्या?
वैश्विक का सत्ता बनने-बनाने के दावाँ करनेवालों,
मुर्हूत देखकर ही काम करने की, सचमुच जरूरत है क्या?

❑

63. गिरगिटों को अपने गिरेबान में...

गिरगिटों को अपने गिरेबान में, झांकने को समय नहीं।
बेईमानी के बदलते रंगों पर, सोचने को समय नहीं।
लालच के लाखों रंगों में, बिताते हैं सारी जिंदगियाँ...
पर, सच्चाई का रंग दिखाने में, गिरगिटों का समय नहीं।।

बीजों को भूमि में, फलने को समय नहीं।
अंकुरों को अवनि में, खिलने को समय नहीं।
बोन्साई बन रही है, भव्य प्रकृति हमारी,
अब बोधिवृक्ष और बरगद, लगाने का समय नहीं।।

डालियों को पत्तों की ओर, देखने की समय नहीं।
पंछियों के अपने बच्चों से, बोलने को समय नहीं।
नष्ट होती जा रही है, नई पीढ़ियाँ धीरे-धीरे,
पर, पेड़ों को अपनी जड़ों की ओर, झुकने का समय नहीं।।

बगुलों के सफेद अंगों का, धोखा कम नहीं।
गिरगिटों के बदलते रंगों का, धोखा कम नहीं।
जहाँ लुच्चे-लफंगे, चला रहे हो गणतंत्र,
वहाँ सच्चाई और अच्छाईयों को, धोखा कम नहीं।।

❑

64. गर्दिशों के गणतंत्र में...

गर्दिशों के गणतंत्र में, देश बिखर जाते हैं।
साज़िशों के शिकंज़ों में, लोग कुचल जाते हैं।
जिस बुनियाद पर बने हैं, मूल्य और आदर्श,
उस नींव को, अपने ही सुरंग लगाते हैं।।

गर्दिशों के गणतंत्र में, रिश्तें गुमनाम हो जाते हैं।
सत्ता की भयंकर भांग में, सिद्धांत भी भुलाये जाते हैं।
सत्ता पिपासा की अमानुष लालसा के पेट से।
मतलबी, अंधे-अनाचारी समुदाय साकार होते हैं।।

गर्दिशों के गणतंत्र में, लोग अँधेरों को ही अपनाते हैं।
छोड़कर साथ उजालों का, अंधकार के ही जयकारे लगाते हैं।
झूँठ का जुनून, इस प्रकार छाता है जनता पर,
कि चोर-उचक्के भी, उन्हें संत-महात्मा नज़र आते हैं।।

गर्दिशों के गणतंत्र में, लोग अपनी पहचान छिपा लेते है।
आँख के अंधे पर, नाम नयनसुख कहलाते हैं।
सत्ता और साज़िशों के फाँसों का तो क्या कहना?
जहाँ अपने ही अपनों के, दुश्मन बन जाते हैं।।

❑

भारत की बुनियाद है, बुद्ध

''भारत की बुनियाद हैं, बुद्ध,
इस मिट्टी की पहचान है, बुद्ध।
विश्वशांति और मानवता स्थापित करनेवाला,
पहला कालजयी नाम हैं, बुद्ध॥''

–'सावन'

65. फिर से चलो बुद्ध की ओर...

फिर से चलो, बुद्ध की ओर, मांगल्य-दीप जलाने।
फिर से चलो, विश्वदीप की ओर, आलोक को बचाने।
भोग और बेईमानी के दलदल में, इस तरह धँसे...,
कि फिर से भलो पद्मपाणी की ओर, जीवन अपना बचाने।।

फिर से चलो तथागत की ओर, जीवन-सुख पाने।
फिर से चलोधम्म दीप की ओर, सद्धम्म को जानने।
अधर्म और अंधविश्वासों के अँधेरों में इस तरह फँसे,
कि फिर से चलो ज्ञानदीप की ओर, सद्ज्ञान-रोशनी पाने।।

फिर से चले गौतम की ओर, मन को गंगा बनाने।
फिर से चलो सिद्धार्थ की ओर, कर्म को जमना बनाने।
भोग और भ्रष्टाचारों के कुड़ों के, ढेरों में ऐसे दबे,
कि फिर से चलो संघदीप की ओर, सदाचारों की ज्योत जलाने।।

फिर से चलो विश्वदीप की ओर, विचारों को उन्नत बनाने।
फिर से चलो शाक्य मुनि की ओर, संसार का सही सुख पाने।
हमारे ही बनाये भेदों के अनेक टुकड़ों में, हम ऐसे बिखँरे हैं...,
कि फिर से चलो बुद्ध की ओर, मानव और मानवता को एक करानें।।

❑

66. सागर इन्सानियत का लाया हूँ...

अजंता की करुणा, आँखों में भरकर लाया हूँ।
बोधीवृक्ष की शीतलता, शब्दों में समाकर आया हूँ।
विकारों से हैवान बनती, इस धरती के लियें...,
आज सागर इन्सानियत का लाया हूँ।।

मीरा की पीड़ा, प्रेम में रँगाकर लाया हूँ।
राधा की दिवानगी, दिल में बसाँकर आया हूँ।
भोगों में तरबतर डूबती इस दुनिया को...,
आज साहिल इन्सानियत का लाया हूँ।।

चेहरों के नकाब, उतराने आज आया हूँ।
सैकड़ों शबाब, पहचानने आज आया हूँ।
पल-पल में रंग बदलती इस कायनात को...,
इन्सानियत का असली रंग दिखाने आया हूँ।।

इन्सानों का निकम्मापन, नापने आया हूँ।
कठपुतले इन्सान तलाशने आया हूँ।
जिनके जमीर जन्म से ही गिरवी रखे हैं...,
उनके ज़मीरों ने आज अहसास कराने आया हूँ।।

❑

67. पेड़ों की छाँव वाले वे लोग...

पेड़ों की छाँव वाले, वे लोग फिर से चाहिए।
आसमाँ को समाने वाले, वे लोग फिर से चाहिए।
गड़ी हो, जिस मिट्टी में, मनुष्यता की गहरी जड़ें,
उस मिट्टी की महक, आज फिर से चाहिए।।

पाखंड पर प्रहार करने वाली, वह वाणी फिर से चाहिए।
समाज को सच्चाई दिखाने वाली, वह दृष्टि फिर से चाहिए।
जो सर पर कफन बाँधकर, खड़े हैं बाजारों में...
वे क्रांतिकारी कबीर, आज फिर से चाहिए।।

औरों के भलाई की, वह भावना फिर से चाहिए।
अपनों के उन्नति की, वह कामना फिर से चाहिए।
विश्वशांति हेतु, जिन्होंने, राजवैभव त्याग दिये...
वे विश्वदीप तथागत बुद्ध, आज फिर से चाहिए।।

आँखों में अपनेपन का, वह अहसास, फिर से चाहिए।
सांसों में संतुष्टि की, वह सुगंध फिर से चाहिए।
जो सेवा समर्पण से सँवारते रहें, औरों की जिंदगियाँ,
उन मेहनती हाथों में, मिट्टी की वह ताकत फिर से चाहिए।।

❑

68. संस्कृतियों की सरिताएँ अब...

संस्कृतियों की सरिताएँ, अब सभी ओर बहानी चाहिए।
सभ्यताओं की सुगंध, अब सभी ओर बिखरानी चाहिए।
सदियों से जिन्हें जिलाया है, अज्ञान शोषण के अँधेरों में,
सच्चाई के सूरजों की रोशनी, अब उन्हें भी दिलानी चाहिए।।

धरती की हरियाली, अब सर्वत्र सँवारनी चाहिए।
आसमां की नीलाई, अब निखारनी चाहिए।
यदि सचमुच बचानी है, सदियों की यह सृष्टि,
तो कुदरत की खुशहाली, अब सर्वत्र बढ़ानी चाहिए।।

बेघरों को अब, उनके घर मिलने चाहिए।
भूमिहीनों को अब, उनकी जमीनें मिलनी चाहिए।
जिन्होंने वतन के वैभव को, सिंचा है पसीने से...
उन मजदूरों की मेहनत को, सम्मान अब मिलना चाहिए।।

बेरोजगारों को अब, उनके रोज़गार मिलने चाहिए।
भूखों को अब, उनकी रोटी मिलनी चाहिए।
दवाओं के अभाव में, जो आज भी दम तोड़ रहे हैं...
उन अभागे बच्चों को, इलाज अब मिलना चाहिए।।

❑

69. जन्म से जिंदगी की जंग...

जन्म से जिंदगी की जंग, लड़ रहा हूँ, आपके साथ।
नेकी और सच्चाई के पाठ, पढ़ रहा हूँ, आपके साथ।
कोई साथ आयें या न आयें...
पर इन्सानियत की राह पर, चल रहा हूँ, आपके साथ।।

मेहनत से मित्रता कर रहा हूँ, आप के साथ।
धरती को हरियाली से, सजा रहा हूँ, आपके साथ।
जिंदगी के इस तप्त रेगिस्तान में...
प्रेम की शीतलधारा बहा रहा हूँ, आप को साथ।।

संकटों का सामना कर रहा हूँ, आपके साथ।
सुखों की सौगात भी बांट रहा हूँ, आपके साथ।
स्वार्थ भरी इस मोहमयी जिंदगी में...
निर्मोही बनने की कोशिश कर रहा हूँ, आपके साथ।।

वर्तमान के पन्नों पर हकीकत लिख रहा हूँ, आप के साथ।
सुनहरे भविष्य के भी संकल्प कर रहा हूँ, आप के साथ।
आसमाँ-सी बुलंदियों को छूने के बाद भी...
इस मिट्टी में पाँव गड़ायें रख रहा हूँ, आपके साथ।।

❑

70. साथियों! सच कड़वा है...

साथियों! सच कड़वा है, क्लेशदायी है।
इसीलिये तो अमिट यथार्थ की स्याही है।
जिसे शक्तिशाली, षडयंत्री युग भी नहीं मिटा पायें...
उस कालजयी इन्सानियत का वह राही है।

साथियों! सच एक दृढ़ संकल्प है।
सच्चाई की राहों का कोई विकल्प नहीं है।
सत्य के रास्ते भले ही हो कठिन...
किन्तु इन रास्तों के मुसाफिर अल्प नहीं है।।

साथियों! सच्चाई इन्सान का गहना है।
तभी तो दुनियाभर के लोगों ने इसे पहना है।
अँधेरों ने सच्चाई का उजाला बार-बार रोका है...
पर सच्चाई के सूरज को तो हरदिन निकलना है।।

साथियों! सत्य से ही, सृष्टि की स्थापना है।
सच्चाई ही सृष्टिकर्ता की आराधना है।
करोड़ों भगवान बनायें, स्वार्थी लोगों ने अबतक...
पर नेकी की इबादत ही सही साधना है।।

❑

71. मेरे देश की बेटियों...!

मेरे देश की बेटियों! बुलंद संविधान की शक्ति बन जाओ।
सदियों से छलनेवाली, आदिशक्ति की प्रतिभा से बाहर आओ।
अत्याचारों के ये, अविरत अँधेरे मिटाने के लिये...
अब इक्कीसवी सदी की ज्वालामुखी बन जाओ।।

देश की बेटियों! पाखंड का पर्दाफाश करते आओ।
फरेब का जाला, अब तोड़ती आओ।
अबला समझकर अत्याचार करनेवालों को...
रणरागिनी का असली रूप दिखाओ।।

मेरे देश की बेटियों! सच्चाई के सबक सिखाती आओ।
दूराचारियों को, दंड़ित करती आओ।
तरक्की की राहें, नित रोकने वालों को...
अपने हूनर और ताकत कर एकबार परिचय कराओ।।

देश की बेटियों! कपट की बेड़ियों को काटती आओ।
छल की कड़ियों को, अब तोड़ती आओ।
नई सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में...
हमारे देश की शाश्वत बुनियाद बनती जाओ।।

❑

72. गुलामों को इन्सान बनाने वाले...

गुलामों को इन्सान बनानेवाले, बाबासाहब हुवें।
निर्बलों को बलवान बनानेवाले, बाबासाहब हुवें।
षडयंत्रों ने जिन्हें युगों-युगों से मुर्दे बनायें रखा...
उन लाखों मुर्दों को जिंदा कराने वाले, बाबासाहब हुवें।।

पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़नेवाले, बाबासाहब हुवें।
स्वतंत्रता की सीढ़ियाँ, बनानेवाले बाबासाहब हुवें।
सदियों से जिन्हें, अछूत ठहराकर कैद रखा...
उन्हें देश में पहला सम्मान देने वाले, बाबासाहब हुवें।।

देश के दलितों के अधिकार देनेवाले, बाबासाहब हुवें।
भारत के बहुजनों को एक करानेवाले, बाबासाहब हुवें।
हजारों पीढ़ियों तक शुद्र समझकर, जिन्होंने कुचला...
उन पाखंड़ियों का पर्दाफाश करने वाले, बाबासाहब हुवें।।

स्त्रियों की समान अधिकार देनेवाले, बाबासाहब हुवें।
नारियों को सम्मान और उत्थान, देनेवाले, बाबासाहब हुवें।
अबला और भोग्या के रूप में जीनेवाले, नारी समाज को...
संविधान के द्वारा सही आदिशक्ति बनानेवाले, बाबासाहब हुवें।।

❑

73. विश्वविजयिनी 'बुद्धभूमि'

विश्वविजयिनी बुद्धभूमि का वंदन करो।
सेवा-त्याग की इस धरती का वंदन करो।
जिस भूमि में जन्में राजकुमार सिद्धार्थ...
उस तपस्वी की पावनधरती का वंदन करो।।

भारत बुद्ध की भूमि है, प्रणाम करो।
इस करुणा और मैत्री की निधि का, अभिमान करो।
सदियों के पाखंड़ों को जिन्होंने पराजित किया...
उस बोधिसत्व की, सच्चाई स्वीकार करो।।

भ्रमित कल्पनाओं का, अब परित्याग करो।
स्वार्थ के जालों को, अब ताड़-ताड़ करो।
सदियों से जी रहे, जो कुपमंडूप बनकर...
अब बुद्ध के मानवता-महासागर को स्वीकार करो।।

कठपुतलियों की तरह, नाचना अब बंद करो।
अपनी बुद्धि और विवेक से भी, तो कभी काम करो।
अज्ञात-अनाकलनिय स्वार्थी खाईयों में, लोगों को धकेलते रहे,
अब काली करतूते छोड़कर, बुद्ध-सत्य का अंगिकार करो।।

❑

74. अँधेरों के कपालों पर...

अँधेरों के कपालों पर उजाले लिखते हैं।
ज्ञान के आकाश में सूर्य खिलाते हैं।
अध्यापक, राष्ट्र के निर्माता हैं साथियों।
जो हरपल, आदर्शवान पीढ़ी गढ़ाते हैं।।

अवसरों के अंतरिक्ष खुद ढूँढते हैं।
सपनों की सवारियों के सारथी बनते हैं।
ये वे मददगार होते हैं...
जो पल-पल जीने की प्रेरणा देते हैं।।

खुद के समान ही, औरों को मानते हैं।
स्वयं से श्रेष्ठ, ये सामने वालों को बनाते हैं।
नींव से शिखर तक, जीवन के निर्माण में...
मनुष्यता के शिल्प, ये आजीवन साकारते हैं।।

दीपकों की तरह, ये औरों के लिये जलते हैं।
वृक्षों की भांति, ये घनी छाँव देते हैं।
बादलों की तरह, सर्वस्व समर्पित करने से ही...
ये, मानवता के सागर कहलाते हैं।

❑

75. बौद्धधम्म का पुनरुत्थान...

बौद्धधम्म का पुनरुत्थान किया, बाबासाहब ने।
बुद्ध भूमि को संविधान से सक्षम बनाया, बाबासाहब ने।
युगों-युगों के गुलामों को रिहा कर...
इन्हें पहली बार इन्सान बनाया, बाबासाहब ने।

सदियों के शोषितों को सम्मान दिया, बाबासाहब ने।
युगों के गुलामों को सवेरा दिखाया, बाबासाहब ने।
बहिष्कृत प्यासों को चवदार तालाब का पानी पिलाकर...
क्रांति की कालजयी मशालें सुलगाई, बाबासाहब ने।

धर्म की दांभिकता का, पर्दाफाश किया बाबासाहब ने।
धर्म के ठेकेदारों का, भंडाफोड़ किया बाबासाहब ने।
मानव-मानव में, विषमता और भेदभाव का बीज बोनेवालों,
विषमतामयी मनुस्मृति का देश में, दहन किया बाबासाहब ने।

अछूतों के लिये कालाराम मंदिर के किवाड़ खुलवाये बाबासाहब ने।
देश की अबलाओं के लिये, हिंदू कोडबिल, प्रस्तुत किया बाबासाहब ने।
देश में अनंत और असहाय अपमान सहकर भी...
विश्वगौरव का भारतीय संविधान लिखा बाबासाहब ने।

❑

76. भारतीयता का सम्मान है...

भारतीयता का सम्मान है, संविधान।
राष्ट्रीयता के पंचप्राण है, संविधान।
स्वतंत्रता, समता और बंधूता का...
कालजयी गौरवगान है, संविधान।।

सामाजिक संवेदनाओं का दर्पण है, संविधान।
देशवासियों का स्वयं प्रति, अर्पण है, संविधान।
समूहों के सदाचारों और संस्कारों का...
समन्वयात्मक समर्पण है, संविधान।।

अधिकारों की अमिट शक्ति है, संविधान।
कर्तव्यों की कड़ी कसौटी है, संविधान।
सक्षम सामाजिकता और सटिक न्याय की...
राष्ट्रशिखर पताका है, संविधान।।

स्वतंत्रता का सागर है, संविधान।
बंधुता की बुनियाद है, संविधान।
करोड़ों वर्षों की विषमता और भेदभाव मिटाने वाला...
समता का विशाल आसमाँ है, संविधान।।

❑

77. विलगीकरण के दायरों को...

विलगीकरण के दायरों को, आज खूब समझा है।
महामारी के विषाणुओं को, आज खूब जाना है।
संसर्गों से बाधित जनों को, उपकार की अभाव में...
एक के पीछे एक दम तोड़ते देखा है।।

विलगीकरण के इन दायरों को नये रूप में बनाते हैं।
मनोविकृत मरीज़ों का, इन्हीं दायरों में इलाज करते हैं।
देश की स्वतंत्रता का अमृतमहोत्सव मनाया गया...
अब मानवधर्म की, नयी सच्ची शुरूवात करते हैं ।।

बरसों पुराने एक विलगीकरण को भी, याद करते हैं।
जिसमें इन्सानों की नरक यातनाएँ हम देखते रहें।
उनकी दवाईयाँ और इलाजों की बात ही दूर रही...
उनके जख्मों पर नमक छिड़क कर हम मुस्कराते रहें।।

कैसे भीषण विलगीकरण, हम सदियों बनाते रहें।
वर्णव्यवस्था की सामाजिक स्वीकृति हम उन्हें देते रहें।
युगों-युगों तक सेवा-चाकरी उन्हीं से कराकर...
स्वयं श्रेष्ठ कुल के नशें में, उन्हें अछूत ठहराते रहें।।

❑

78. भारत की बुनियाद हैं बुद्ध...

भारत की बुनियाद हैं, बुद्ध,
इस मिट्टी की पहचान है, बुद्ध।
विश्वशांति और मानवता स्थापित करने वाला,
पहला कालजयी नाम हैं, बुद्ध।।

सत्य का सहारा है बुद्ध।
करुणा का किनारा हैं, बुद्ध।
विश्व ने जिसको, स्वीकारा है,
सदाचार का, वह बसेरा है बुद्ध।।

दांभिकता पर प्रहार है, बुद्ध।
पाखंड का करारा जवाब है, बुद्ध।
समता-स्वतंत्रता के सूत्र देने वाला,
पहला वैज्ञानिक नाम है, बुद्ध।।

श्रमजीवी संस्कृति का सम्मान हैं, बुद्ध।
वीर-महात्माओं का अभिमान हैं, बुद्ध।
देश-विदेश की मिट्टी में...
अपने अस्तित्व का, प्रमाण हैं, बुद्ध।।

❑

79. आसमाँ की नीलाई आँखों में...

आसमाँ की नीलाई, आँखों में समा ले।
फूलों की खुशबू, साँसों में समा ले।
बेजान बनती इस इन्सानी जिंदगी में...
थोड़ी-सी महक, मिट्टी की समा ले।।

पत्तों की हरियाली, आचरण में समा ले।
कुसुमों के रंग, खून में समा ले।
बेरंग बनती इस, आज की जिंदगी में...
थोड़े-सी झाकियाँ इंद्रधनुष की समा ले।।

झरनों की जिंदादिली जुँबा पर समा ले।
पानी की शीतलता, बातों में समा ले।
बंजर बनती जा रही, इस इन्सानी उम्र में...
थोड़ी-सी बूँदें, बादलों की समा ले।।

पंछियों की उड़ानें, बाजुओं में समा ले।
नीड़ों का निर्माण, अपने हुनर में समा ले।
कमजोर पड़ती जा रही, अपनी सृजनशीलता में...
थोडी-सी पीड़ा, पपीहे की भी समां ले।।

❑

80. विध्वंस को शांत कराकर...

विध्वंस को शांत कराकर, बुद्ध बनें।
पाखंड को मिटाकर, बुद्ध बने।
है विश्व, अब विनाश की कगार पर...
मानवता के पाठ पढ़ाकर, बुद्ध बने।।

सेवा के सबक सिखाकर, बुद्ध बने।
कायनात में करुणा जगाकर, बुद्ध बने।
दुनिया डूब रही, दांभिकता के दरिया में...
'सच्चाई के साहिल' रूप में, बुद्ध बने।।

जल्लादों के जश्न रूकाकर, बुद्ध बने।
सज्जनों को सुलियों से हटाकर, बुद्ध बने।
हर एक आँगन हो रहा, लहूलुहान आतंक से...।
शांति-सेवा के संदेश सुनाकर, बुद्ध बने।।

विषधरों के दंत गिराकर, बुद्ध बने।
अधर्म की दुकाने बंद कराकर, बुद्ध बने।
हर दिन गुलाम हो रहें, यहाँ के मन-मस्तिष्क...
युगों की मनोरुग्णता को मिटाकर, बुद्ध बने।।

❑

81. बुद्ध की करुणा सांसों में...

बुद्ध की करुण, सांसों में समा लो।
शांति के संदेश, माथों में बसा लो।
इस मोहमयी और मर्त्य जिंदगी को...
विश्वदीप तथागत से आलोकित करो लो।।

बुद्ध की प्रज्ञा, विचारों में उतार लो।
सत्य के सूर्यों से, आचरण सँवार लो।
अनिति-अत्याचारों की आग को...
सद्धम्म वाणी से शांत करा लो।।

बुद्ध के शिल को, शस्त्र बना लो।
जीवन को संयम की, शिक्षा दिला दो।
बेतहाशा भागती इस अँधी दौड़ को...
संतुष्टि की नई दृष्टि आँखों में मिला दो।।

बुद्ध की महामैत्री का, स्वयं से परिचय करा लो।
चराचर के बोधीसत्व से, खुद को मिला लो।
इस जीवन की क्षणभंगुरता में छिपी...
कालजयी कर्मण्यता के दर्शन करा लो।।

❑

82. युद्ध नहीं बुद्ध बनें...

युद्ध नहीं, बुद्ध बनें।
मनुष्यता की मिसाल बनें।
फेंककर पाखंड़ी पोथियों को...
शाश्वत सत्य का, सृजन बनें।।

अज्ञानी नहीं, ज्ञानी बनें।
विवेक की, शाश्वत वाणी बनें।
उतारकर मनमस्तिष्क से, मनगढंत साँज...
तार्किक विचारों के, विशुद्ध स्वर बनें।।

कुप-मंडूक नहीं, जलधारा बनें।
सभ्यताओं के साहिल बनें।
मुक्त कर, संस्कृतियों को शैवालों से...
सच्चाई की शाश्वत प्रतिभा बने।।

पाखंड़ी नहीं, प्रज्ञावान बनें।
सद्ज्ञान की सच्ची कहानी बनें।
जलाकर भेदभावों के, अब ग्रंथ सारे...
समता-बंधुता की नई ज़ुँबानी बनें।।

❑

83. हजारों वर्ष पहले से विश्व में...

हजारों वर्ष पहले से, विश्व में बुद्ध की राह रही है।
आज हजारों वर्ष बाद भी, विश्व में बुद्ध की चाह रही है।
पाखंड और मनगढंत बातों से, किस युग में समस्याएँ सुलझी?
इसलिए बुद्ध की शाश्वत सत्यवाणी, नित विश्वकल्याणकारी रही है।।

सृष्टि के सृजन से ही, सच्चाई की बुनियाद रही है।
मानवता की मंजिले, यथार्थ की नींव पर खड़ी रही है।
झूँठ के झंडे लगाने से, असलियत कहाँ तक छिपी है?
विश्व की विरासतें, अपने आदिम रूप में ही उभर रही हैं।।

ग्रह-तारों की गति, कब मनुष्यों के हाथों में रही है?
हाथों की लकीरें कब, आयुष के आईने रही है?
भविष्य बताकर, भोली जनता को भ्रमित करने वालों,
वर्तमान में लोगों की, इतनी खस्ता हालत क्यों रही है?

पाप की परिपूर्ण परिभाषा, अब क्यों नहीं हो रही है?
पुण्य की परिध-सीमाएँ, अब तक बन क्यों नहीं रही है?
अधर्म की पुश्तैनी पतपेढियों पर बैठने वालों,
जन्नत-नर्क की दुकानें, अब तक बंद क्यों नहीं हो रहे हैं?

❑

84. गर्दिशें गणतंत्र की हटाने, बुद्ध...

गर्दिशें गणतंत्र को हटाने, बुद्ध फिर से चाहिए।
जख़्म इन्सानियत के मिटाने, बुद्ध फिर से चाहिए।
कितना-कुछ खरीद रहे हैं, पैसों से आदमी,
पर सुकुन सच्चे समझाने, बुद्ध फिर से चाहिए।।

सच्चे सुख के संदेश दिलाने, बुद्ध फिर से चाहिए।
विश्व-विज्ञान के पाठ पढ़ाने, बुद्ध फिर से चाहिए।
अज्ञान के अँधेरों में, घिर रहे हैं आदमी,
ज्ञान का आलोक बिखँरानें, बुद्ध फिर से चाहिए।।

भोगवादिता भूमि से मिटाने, बुद्ध फिर से चाहिए।
निर्मलता जीवन में बहाने, बुद्ध फिर से चाहिए।
लालच की दौड़ में, लाशें बन रहे हैं लाखों आदमी,
जिंदगी की सही पहचाने बताने, बुद्ध फिर से चाहिए।।

मांगल्यता मनुष्यों में बसाने, बुद्ध फिर से चाहिए।
दिव्यता दिलों में जगाने, बुद्ध फिर से चाहिए।
करोड़ों की संपत्ति पाकर भी, झुर बने हैं आदमी,
करुणादीप अंतःकरण में जलाने, बुद्ध फिर से चाहिए।।

❑❑❑